आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
गुरुवर आर्जवसागरजी
के लिए मार्गदर्शन देते हुए

आचार्यश्री 108 गुरुवर
विद्यासागरजी महाराज
को नमन करते हुए
गुरु आर्जवसागरजी

आचार्यश्री 108
आर्जवसागरजी को
नमन करते हुए संघस्थ
मुनिगण

आचार्यश्री विद्यासागरजी
आर्जवसागरजी को
आशीष देते हुए।

जैन शासन का हृदय

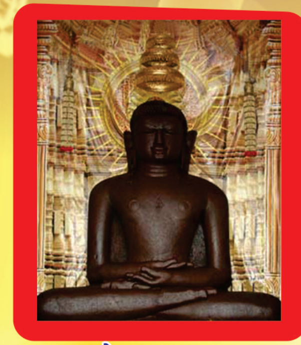

1008 बड़े बाबा कुण्डलपुर

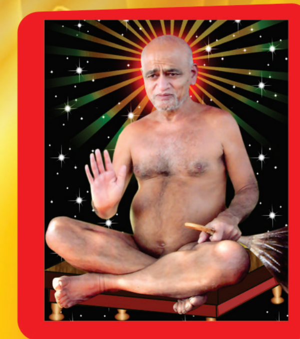

आचार्य प्रवर प.पू. 108
विद्यासागरजी महाराज

प्रवचनकार
अध्यात्मिक योगी आचार्यश्री 1008 आर्जवसागरजी महाराज

परम पूज्य आचार्यश्री १०८ आर्जवसागर जी महाराज का जीवन परिचय

पूर्वनाम	-	पारस चन्द जैन,
पिताजी	-	श्री शिखर चन्द जैन
माताजी	-	श्रीमति माया बाई जैन
जन्म तिथि	-	11.09.1967 (भाद्र शुक्ल अष्टमी)
जन्म स्थल	-	फुटेरा कलाँ, दमोह (म.प्र.)
बचपन बीता	-	पथरिया जि. दमोह
शिक्षा	-	बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज (दमोह)
ब्रह्मचर्य व्रत	-	19.12.1984 अतिशय क्षेत्र पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	-	1984 सिद्ध क्षेत्र अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	-	08.11.1985 सिद्ध क्षेत्र अहार जी
ऐलक दीक्षा	-	10.07.1987 अतिशय क्षेत्र थूबोन जी
मुनि दीक्षा	-	31.03.1988 महावीर जयन्ती, सिद्ध क्षेत्र सोनागिर जी
दीक्षा गुरु	-	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्य पद	-	25.01.2015 (माघ शुक्ल षष्ठी) (समाधि पूर्व आचार्य श्री सीमंधरसागर जी द्वारा)
कृतियाँ	-	धर्मभावना शतक, जैनागम संस्कार, तीर्थोदय काव्य, परमार्थ साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक् ध्यान शतक, जैन धर्म में कर्म व्यवस्था, नेक जीवन, पर्यूषण पीयूष, आर्जव-वाणी, आर्जव कविताएँ, जैन शासन का हृदय।
पद्यानुवाद	-	गोम्मटेश थुदि, वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधि तंत्र, द्रव्य संग्रह।

चा.च. आचार्यश्री108 शांतिसागरजी के शिष्य आचार्यश्री सुपार्श्वसागरजी से सन् 1958 में दीक्षित 90 वर्षीय आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी से रत्नत्रय की कुशलता पूछते हुए गुरुवर आर्जवसागरजी।

सल्लेखना के समय आ.श्री सीमंधरसागरजी की आंतरिक भावना को सुनकर ठीक है महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है हम आचार्यपद की रक्षा करेंगे।

मुनिश्री आर्जवसागरजी के सिर पर पीछी रख मंत्र पढ़ते हुए आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी।

मुनिश्री आर्जवसागरजी के सिरपर हाथ रख आचार्य पद की संस्कार विधि करते हुए आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी।

जैन शासन का हृदय

प्रवचनकार
आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

प्रकाशक
भगवान महावीर आचरण संस्था समिति, भोपाल

कृति	–	जैनशासन का हृदय
प्रवचनकार	–	आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज
संकलन	–	आर्यिकाश्री प्रतिभामति माताजी एवं आर्यिकाश्री राजितमति माताजी
पावन संदर्भ	–	आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज के आचार्य पदारोहण दिवस की स्मृति में
पुण्यार्जक	–	1. श्रीमान सुरेशभाई एवं श्रीमति लीलाबेन गांधी, सूरत(गुजरात) 2. श्री नरेश जैन, अजमेर (राज.)
मुद्रक	–	पारस प्रिन्टर्स (पवन जैन 'पारस') 207/जी-10, सांई बाबा कामप्लेक्स, जोन-1 एम.पी. नगर, भोपाल फोन 0755-4260034, 9826240876
प्रकाशक व प्राप्ति स्थान	–	भगवान महावीर आचरण संस्था समिति, एम.आई.जी. 8/4, गीतांजली कॉम्पलैक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल 462003 मो.: 9425601161, 9425601832, 9425140653, 9425011357

अनुक्रमणिका

★	अपनी बात	04
★	गुरु आर्जवसागराष्टकम्	06
★	आचार्यश्री विद्यासागर वंदनाष्टक	08
★	एक महान आचार्यश्री सीमंधरसागरजी	10
★	मोक्षार्थियों को सौगात	19
1.	दैव और पुरुषार्थ	21
2.	नियत और अनियत	27
3.	निमित्त और उपदान	38
4.	अनेकान्त को पहचानो	48
5.	अनादि विश्व और वर्तमान दृष्टि	65
6.	भव मुक्ति का उपाय	78
7.	युग के आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभनाथ	91
8.	तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका दिव्य संदेश	100
9.	भावना भव नासिनी	107
★	आचार्यश्री सीमंधरसागर संस्तुति	116

अपनी बात

जिनेन्द्र भगवान के उपासक जैन कहलाते हैं। जीवन का एवं जीवन के विकास करने का ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम दर्शन है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित शासन ही जैन शासन है। जैन शासन आत्मा, परमात्मा और पुनर्जन्म में विश्वास रखता है। जैन शासन के अनुसार जीव की परम विशुद्ध अर्हन्त व सिद्ध अवस्था ही परमात्मा या ईश्वर है। इनसे अतिरिक्त अन्य कोई जगत-व्यापी एक ईश्वर नहीं है। प्रत्येक आत्मा कर्मों का समूल क्षय (नाश) करके परमात्मा बन सकता है।

संत शिरोमणि आचार्यश्री 108 विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित परम प्रभावक परम पूज्य आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज ने जैन आगम के गूढ़तम विषयों को सरलता से जन सामान्य के समक्ष प्रवचनों के द्वारा प्रकट किया है। सामान्यत: जनमानस/समाज को आज की भौतिकता की नए-नए चकाचौंध युक्त जगत की भाग-दौड़ की जीवन शैली में जैन आगम संबंधित विषयों की महती आवश्यकता है। जैन शासन मूलत: 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत पर आधारित है। कैसा जीवन जियो? से आशय है कि सभी जीवों के जीवन का अहिंसात्मक विकास हो जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य के द्वारा अहिंसात्मक जीवन शैली (Non-Violent Life Style) अपनायी जाना आवश्यक है। जीवन शैली अहिंसात्मक आचार-विचार सहित हो। आचार-विचार की व्यापकता के दृष्टिगत सूक्ष्मता के साथ जीवन के प्रत्येक क्रियात्मक आयाम अर्थात् रहन-सहन, सोच-विचार आदि सभी क्रियाओं का पालन हो। तभी 'जियो और जीने दो' सार्थक हो सकेगा। जीवन शैली (Life style) में अहिंसात्मक आचार-विचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन आगम में स्वस्थ्य जीवन शैली जीने के रहस्यों से भी समाज लाभान्वित किया है। आज की प्रतिस्पर्धात्मक जीवन शैली में जैन आगम संबंधित नए-नए विषयों के द्वारा समाज को सही दिशा तथा दशा का बोध वैज्ञानिक ढंग से करवाया है। यदि वैज्ञानिक ढंग से नए विषयों को युवा-पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुति की जाती है तो

युवा–पीढ़ी अपनी जीवन शैली में इसे अपनाकर अपने जीवन को सार्थक बना सकती है। इसी तरह पूज्य आचार्यश्री ने प्रवचनों के माध्यम से अनेकान्तात्मक विषयों को समझाकर इस काल की महती आवश्यकता की पूर्ती की है। परम पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज के द्वारा ''जैन शासन का हृदय'' में सरल, सहज, बोधगम्य, वैज्ञानिक एवं अनुसंधनात्मक प्रवचनों के माध्यम से दैव–पुरुषार्थ, नियत–अनियत, और निमित्त–उपादान आदि विषयों को प्रत्येक धर्मप्रेमी हेतु संसार भ्रमण से छूटने का क्रमिक, सशक्त एवं प्रबल आधार बनाने का उद्बोधन दिया गया है। आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज के अशोक नगर वर्षायोग 2005 में हुए इन्द्रध्वज महामण्डल विधान महोत्सव में हुए प्रवचनों के सारांश एवं भोपाल 2004 तथा रांची 2006 में सम्पन्न हुई विद्वत् संगोष्ठी में हुए समीक्षात्मक उद्बोधनों के संग्रह रूप में इन प्रवचनों रूप आलेखों के पठन–पाठन से शुभ–अशुभ कर्म और पुण्य–पाप रूपी कर्मों आदि का ज्ञान होने पर अनेकान्तमय जीवन के विकास को प्राप्त कर सकते हैं।

उपरोक्त परिपेक्ष्य में वंदनीय आर्यिकाश्री 105 प्रतिभामति माताजी व आर्यिकाश्री 105 राजितमति माताजी द्वारा 'जैन शासन का हृदय' पुस्तक में नौ प्रवचनों का संकलन हुआ है। जिसमें परमपूज्य आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज एवं आर्यिका द्वय के द्वारा कृत उपकार पर हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तथाहि आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज के संघ में विराजमान मुनिराजों को सविनय नमोस्तु और आर्यिकाओं के लिए वंदामि तथा क्षुल्लक महाराज के लिए इच्छामि निवेदित करते हैं।

'जैन दर्शन का हृदय' पुस्तक का प्रकाशन श्रीमान सुरेशभाई श्रीमति लीलाबेन गांधी, सूरत एवं श्री नरेश जैन, अजमेर के सौजन्य से किया गया है। जिन्हें हम धन्यवाद का पात्र मानते हैं।

इत्यलं।

डॉ. अजित जैन

गुरु आर्जवसागराष्टकम्

पं. लालचंद ''राकेश''

1. हे श्रेष्ठ श्रमण! हे महाव्रती, हे रत्नमयी के भागीरथ ।
तुमने जगती को दर्शाया शिवपुर जाने का सच्चा पथ ।।
हे निर्विकार निर्लेप संत, हे महावीर के लघुनन्दन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

2. हे ग्राम फुटेरा के पारस, मंडल दमोह के महारतन ।
श्री शिखरचन्द –मायादेवी की, कोख हुई तुमसे पावन ।।
बचपन में ग्राम पथरिया की, माटी को आप किया चन्दन।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

3. जग उपवन के सुमन सभी, चुन लेता यमरूपी माली।
यह सत्य पा लिया बचपन में, एक दिन झड़ना जीवन डाली ।।
कालबली से लड़ने को, आरूढ़ हुए संयम स्यंदन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

4. आचार्य श्री विद्यासागर से, जीवन में गौरव आया।
क्रमशः संयम सोपानों चढ़, सोनागिरि में मुनि पद पाया।।
श्री गुरुवर आशीष दिया, आर्जवनिधि नाम किया अंकन।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

5. गुरु विद्यानिधि के चरणों में, जिनवाणी पीयूष पिया ।
ज्ञान–ध्यान–तप के द्वारा, जीवन को कुन्दन बना लिया।।
सूरज–सम दक्षिण गमन किया, चढ़ा शीष गुरु रज चंदन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

6. तमिल, कर्नाटक, महाराष्ट्र को, तेरह वर्षों सान्निध्य दिया ।
'संस्कार जैनागम' का दे, वापस उत्तर आगमन किया ।।
प्रासुकाश्रु गुरुपद धोये, बारम्बार किया वन्दन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

7. हे जिनवाणी माँ के सपूत, हे विद्वानों के धर्म-पिता ।
तुमने मिथ्यात्व नशाया है, बनकर के स्याद्वाद सविता ।।
साहित्य मंजरी मुनिवर की, सुरभित आतम मलयज चंदन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

8. सागर-सी गहराई संग में, मुश्किल हिमगिरि-सी ऊँचाई ।
श्री मुनिवर में रहते हैं, दोनों बनकर भाई-भाई ।।
हे गुणसुमनों के नन्दनवन, शत-शत प्रणाम शत-शत वंदन ।
आर्जव गुरुवर को वन्दन, शतशः गुरुवर का अभिनंदन ।।

36, अमृत एन्क्लेव,
अयोध्या बाईपास, भोपाल
मो. 9425372740

आचार्यश्री विद्यासागर वंदनाष्टक

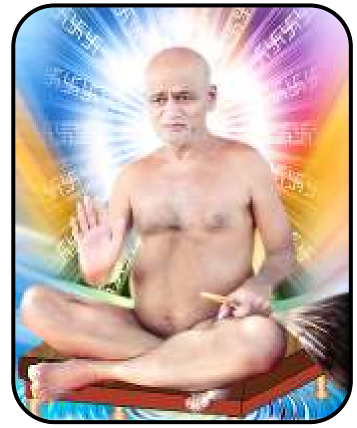

ज्ञानसागराचार्य श्री के, विद्यासागर शिष्य महा।
दृढ़ वैरागी यथाजात हैं, बहती समता सिन्धु जहाँ॥
निजातम के भेदज्ञान से, शुद्धातम को जो ध्याते।
नमन करें हम गुरु चरणों में, उनके गुण संस्तुति गाके ॥ 1 ॥

ध्यान-साधना अपूर्व जिनकी, समता का सौरभ देती।
जिनका दर्शन पाकर अखियाँ, कर्म-मैल को धो लेतीं॥
जिनकी अमृतवाणी सुनकर, प्राणी जय-जय करते हैं।
ऐसे विद्यासागर को हम, शत-शत वंदन करते हैं ॥ 2 ॥

भव-वन में हम भटक रहे थे, गुरुवर ने सन्मार्ग दिया।
कुम्भकार के सदृश हमको, साधक का आकार दिया॥
समयसार का सार बताकर, शिष्यों का उद्धार किया।
नमस्कार उन विद्या गुरु को, जिनने यह उपकार किया ॥ 3 ॥

रत्नत्रय के धारी गुरुवर, शिवपथ के हैं पथिक रहे।
धर्म-मार्ग के नायक हैं जो, मोह-जाल से पृथक रहे॥
जिन्हें, जगकी असारता का, चिंतन निश-दिन साथ रहा।
ऐसे गुरु के चरण कमल में, मेरा झुकता माथ रहा ॥ 4 ॥

जिनके हृदय में वात्सल्य की, धारा नियमित बहती है।
अनेकान्त मय सम्यक्वाणी, मिथ्यातम को हरती है॥
सिद्धान्तों का आलोढ़न जो, प्रति-दिन करते रहते हैं।
उन विद्या के सागर को हम, अन्तर मन से नमते हैं ॥ 5 ॥
दीक्षा-शिक्षा देने में जो, निपुणशील गुरुराज महा।
आवश्यक में दृढ़ धर्मी हैं, ना हैं लौकिक काम वहाँ॥
सिंहवृत्ति-सम चर्या के जो, पालक मम गुरु हैं न्यारे।
वंदन करते मिलें आपके, उत्तम गुण मुझको प्यारे ॥ 6 ॥

आचार्य बने, आचारों का, पालन करते-करवाते।
मूलगुणों अरु उत्तरगुण में, निज चेतन को नहलाते॥
हे गुरु! तेरी महिमा को मैं, कैसे? कब तक? गा सकता।
विद्या-रूपी सागर बनकर, तुमको कब? मैं पा सकता ॥ 7 ॥

सूरितिलक हो गुणवन्तों के, प्रतिपल गुण से शोभित हो।
कर्त्तव्यनिष्ठ, सत्-योगी हो, परिषह से ना क्षोभित हो॥
अद्भुत कैसा? मुख-मण्डल पर, तप का तेज चमकता है।
विद्या गुरु को "आर्जवता" से, मन यह वंदन करता है ॥ 8 ॥

-आचार्य आर्जवसागर

एक महान आचार्यश्री सीमंधरसागरजी

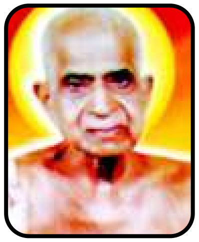

आगम में कथित है कि पंचमकाल में निर्बाध रूप से मुनि परम्परा चलती रहेगी यथा काल मुनि होते रहेंगे और अन्तिम मुनि वीरांगज मुनि होंगे। लेकिन जो लोग कथन करते हैं कि पंचमकाल में मुनि दर्शन का अभाव है और कुछ लोग पंचमकाल की आड़ में शिथिलाचारी होकर आगमिक चर्या से दम तोड़ हिम्मत हारते हैं; उन्हें आचार्य सीमंधरसागरजी जैसे साधु एक चुनौती सिद्ध होते हैं। ऐसे धीर-वीर साधुओं की चर्या देखकर लगता है कि हम कहीं चौथेकाल में तो नहीं बैठे हैं; संयमी जीवन भर जिन्होंने नमक, शक्कर का आजीवन त्याग किया हो, वर्षों से एक अन्न के साथ आहार लिया हो और अनेक प्रदेशों में हजारों किलोमीटर पद विहार किया हो और उपवासों के साथ णमोकार मंत्र और तत्त्व चिंतन पूर्वक 90 (नब्बे) वर्ष की उम्र में समाधि प्राप्त की हो ऐसे महातपस्वी आचार्य सीमंधरसागरजी को कौन भुला सकता है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी की परम्परा के पुराने आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी का परिचय चम्पाबाग मन्दिर, लश्कर, ग्वालियर की दिगम्बर जैन समाज ने दिनांक 23 मई 1995 में आराधना प्रिंटिंग प्रेस, दाना ओली, लश्कर वालों ने जिस तरह प्रकाशित करवाया था उसी तरह यहाँ शब्द सह प्रस्तुत कर रहे हैं। जिस परिचय को जानकर आप सभी का हृदय प्रफुल्लित हुये बिना नहीं रहेगा। समाधि सम्राट-स्वर्गीय परम पूज्यनीय बाल ब्रह्मचारीश्री 108 सुपार्श्वसागरजी (आचार्यश्री 108 चा.च. शान्तिसागरजी महाराज की परम्परा में) के शिष्य बाल ब्रह्मचारी, तपोनिष्ठ चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी महाराज का जीवन चरित्र एक सिंहावलोकन निम्नानुसार है:-

प्रिय धर्म स्नेहीजन,

यह हमारा परम सौभाग्य है कि अपने नगर में आचार्यश्री 108 सीमंधर सागरजी महाराज का 30 वर्ष के पश्चात् पुन: पदार्पण हुआ। आचार्यश्री

चम्पाबाग मन्दिर, दानाओली, लश्कर में विराजमान हैं।

जो बुजुर्ग हैं वे; आचार्यश्री का लश्कर में सन् 1964 में वर्षायोग एवं उस अवधि में सम्बोधित अमृतमयी वाणी में धर्म-उपदेश को भूले नहीं होंगे। नई पीढ़ी के लिए उनका परिचय आवश्यक प्रतीत होने से, यहाँ अत्यन्त संक्षिप्त में, आचार्यश्री से यदा-कदा वार्ता के आधार पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार दिया जा रहा है।

जन्म, गृहस्थ-अवस्था के माता-पिता-

आचार्यश्री का जन्म 26 मई 1926 में ग्राम हलगे, जिला बेलगांव कर्नाटक प्रान्त में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मलप्पा साह (भगवान मल्लिनाथ के नाम पर मलप्पा) एवं माताजी का नाम श्रीमती पद्मावती था। सम्पन्न एवं धार्मिक वातावरण में जन्मे श्री बालक ''जिनप्पा'' के चार भाई और दो बहिनें थीं और ये दूसरे पुत्र थे।

क्षुल्लक, एलक एवं मुनि-दीक्षा-

बालक ''जिनप्पा'' का बचपन में ही धर्म के प्रति रुझान था। युवावस्था प्राप्त होने पर विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत कर अखंड-आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले श्रावक धर्म का निर्दोष पालन करने लगे। संसार शरीर भोगों से विरक्तता रूप सप्तम प्रतिमा व्रत के लिये कार्तिक शुक्ल दोज सोमवार सन् 1953 में ग्राम 'देवरसिंगी हल्ली' कर्नाटक प्रांत में आचार्यश्री 108 वीरसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ली एवं मल्लिसागर नाम धारण किया। अब आपका अधिकतम समय धर्म ध्यान में लगने लगा। एक वर्ष तक गुरु के साथ देश भ्रमण किया एवं शिखरजी की वंदना की।

पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1958 (आषाढ़ शुक्ल) आचार्यश्री 108 सुपार्श्व सागरजी महाराज से जालना (महाराष्ट्र प्रान्त) में एलक दीक्षा एवं उसी वर्ष मंगसिर शुक्ल पूर्णिमा की कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र में सम्पूर्ण परिग्रह छोड़ मुनि दीक्षा ली एवं आपका नाम ''सीमन्धर सागर'' प्रसिद्ध हुआ। समाधि सम्राट स्व.प.पू. श्री 108 आचार्य सुपार्श्वसागर जी, चा.च. आचार्यश्री 108 शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा के थे।

आचार्य पदवी–

आपके पावन प्रवचनों एवं पंचाचार का आचरण करते कराते हुए देख श्री 108 आचार्य सुबाहुसागर जी, श्री 108 मुनि सिद्धसागर जी, आर्यिकामाता श्री सुमति माताजी, समाजसेवी विद्वान श्री बाबूलाल जी जमादार बड़ोद, श्री नारेजी प्रतिष्ठाचार्य बम्बई की सानिध्य एवं श्रावक–श्राविकाओं ने एकत्रित हो मार्च 1974 को त्रिलोकपुर, वाराबंकी जिला बिहार प्रान्त में शुभ मुहूर्त्त में ''आचार्य पदवी'' से विभूषित किया।

नगर–नगर, डगर–डगर भ्रमण एवं चातुर्मास–

मुनि अवस्था में प्रथम चातुर्मास कन्नड़ (महाराष्ट्र) में किया। तदन्तर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, शिरड सापुर, अतिशय क्षेत्र नवागढ़ अनसिंग (महाराष्ट्र) चातुर्मास लौटकर शिरड सापुर चातुर्मास, संघ सहित श्री सम्मेद शिखरजी की यात्रा लौटकर यवतमाल, वर्धा, रामटेक अतिशय क्षेत्र, सुशिवनी, जबलपुर, कटनी, रीवा, मिर्जापुर, बनारस, ईसरी में चातुर्मास, वैजनाथजी, श्री मंदारगिरि, भागलपुर, नवादा, पावापुरी, गुणावा, पटना, आरा, कटनी (चातुर्मास) दमोह, कुंडलपुर, अतिशय क्षेत्र–पपोराजी, अहारजी, टीकमगढ़, सोनागिर, लश्कर (ग्वालियर) (चातुर्मास), शौरीपुर, अलीगढ़, मेरठ (चातुर्मास)–गिरनारजी के लिये प्रस्थान, दिल्ली होते हुए–जयपुर, अजमेर, सिद्धक्षेत्र तारंगाजी, मेहसाना, राजकोट, जूनागढ़, गिरनारजी, अहमदाबाद (चातुर्मास) सिद्धक्षेत्र शत्रुन्जय से श्रवण वेलगोल (गोमटस्वामी के अभिषेक के समय) पावागढ़, मांगी तुंगी, गजपंथा, औरंगाबाद, कचनेर, कुंथलगिरि, मैसूर, हुबली, इन्डी (चातुर्मास), लातुर, हैदराबाद, (चातुर्मास), पूसद महाराष्ट्र (चातुर्मास), सम्मेद शिखरजी की संघ सहित यात्रा के लिये प्रस्थान–आरा, राजगिर, शिरडी, सम्मेद शिखरजी (चातुर्मास), रांची (चातुर्मास), टिकेत नगर (चातुर्मास), त्रिलोकपुर (आचार्य पदवी से विभूषित) टिकेत नगर (पंच कल्याणक प्रतिष्ठा), बहराइच (चातुर्मास), महमूदाबाद (चातुर्मास), इटावा (चातुर्मास), अलवर, मालपुरा नासरदा, उदयपुर, अतिशय क्षेत्र अडिन्दा पार्श्वनाथ, फुलेज, आष्टा, सूरत, खुड़ई, कन्नोज सभी में (चातुर्मास) देश की राजधानी दिल्ली में दो बार चातुर्मास किये।

धर्म प्रभावना एवं दीक्षा समारोह–

उपरोक्तानुसार–महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा प्रान्तों के नगरों एवं सिद्ध क्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों में विहार करते हुए जैन धर्म की प्रभावना/प्रचार का महान व्रत का निर्वाह कर रहे हैं। सिद्ध क्षेत्र गिरनार जी की यात्रा से लौटते समय सोनगढ़ में कानजी स्वामी से दो घण्टे चर्चा एवं उनका आचार्य श्री से प्रभावित होना उल्लेखनीय है।

आचार्यश्री ने पात्रता पर ध्यान देते हुए ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, एलक, मुनि की दीक्षायें दी। कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं–

1. सन् 1964 फाल्गुन की अष्टान्हिका में सोनागिर सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लिका की दीक्षा दी एवं सुशीलमति माता जी का नाम दिया।
2. सन् 1965 में एटा उत्तरप्रदेश में ब्रह्मचारी नेनोराम को क्षुल्लक दीक्षा नाम–सुमतिसागर।
3. सन् 1966 गिरनार सिद्ध क्षेत्र पर ब्रह्मचारी रमेशचन्द (फिरोजाबाद) क्षुल्लक दीक्षा नाम नेमीसागर–वर्तमान में आचार्यश्री 108 निर्मल सागरजी महाराज।
4. ज्ञानाबाई की क्षुल्लिका दीक्षा नाम–राजमति।
5. जालना में मुनि दीक्षा नाम मल्लिसागर जी।
6. मद्रास में ब्रह्मचारी को क्षुल्लक दीक्षा नाम–सुपार्श्व सागरजी।
7. सन् 1971 में मधुवन (श्री सम्मेद शिखरजी) 13 पंथी कोठी में ब्रह्मचारी मोतीलाल जी (कोटा निवासी) को मुनि दीक्षा नाम–सिद्धसागर से सुशोभित।

   इसके अतिरिक्त और दीक्षा सम्बन्धित जानकारी समयाभाव के कारण एकत्रित नहीं की जा सकी इसका खेद है।

वर्तमान में विभिन्न कारणों/उद्देश्यों से दिगम्बर साधुओं के प्रति समाज में उदासीन भाव की प्रवत्ति देखने को मिल रही है। प्रसन्नता है कि इस कलिकाल में भी अपने मध्य ऐसे आचार्य / मुनि / त्यागी वृति विद्यमान हैं जिनके दर्शन मात्र से सभी भ्रान्तियाँ निर्मूल हो जाती हैं। आसातादि कार्यों की उदीरणा के अर्थ उग्रोग्रतप धारण करते, शरीर की कुशलता की ओर ध्यान न देते हुए आत्म–

दिव्य शक्ति सह होते हैं, ऐसे संतों को शतशत अभिनंदन/ नमन।

आचार्य सीमान्धर सागरजी महाराज को तपस्वी जीवन-यापन करते हुए 42 वर्षों से अधिक का समय हो रहा है। आगामी 26 मई 1995 को वे अपने इस जीवन के 70वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। हम लोगों की कामना है कि रागद्वेष के अधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्द की ओर सतत् प्रयत्नशील रहें एवं हम लोगों को धर्म का सदुपदेश देते रहें। उन्हें शत्-शत् नमन।

इस प्रकार आचार्य सीमंधरसागरजी के 23 मई 1995 में मई ग्रीष्मकालीन प्रवास पर ग्वालियर वालों ने यह परिचय प्रस्तुत किया था, तथा महावीर ट्रस्ट इन्दौर से सन् 2008 में प्रकाशित 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन मन्दिर निर्देशिका' पुस्तक के पेज क्र. 48 में दिये गये चा.च.आ. शान्तिसागरजी की परम्परा के चार्ट में दर्शाया है कि आ. शान्तिसागरजी के बाद क्रमशः आ. वीरसागरजी को, आ. वीरसागरजी से आ. शिवसागरजी को और आ. शिवसागरजी को आचार्य पद मिलने के बाद एक साथ इनकी परम्परा की चार धारायें उत्पन्न हुयीं। जिसमें एक धारा आ. धर्मसागरजी से आ. अजितसागरजी वाली, और एक धारा आ. ज्ञानसागरजी से आ. विद्यासागरजी वाली, और एक धारा मुनिश्री सम्मानसागरजी से मुनिश्री दयासागरजी वाली और एक धारा आ. सुपार्श्वसागरजी से आ. सीमंधरसागरजी वाली दर्शायी गई है। इस धारा के अनुसार आ. सीमंधरसागरजी आ. शान्तिसागरजी के चतुर्थ आचार्य सिद्ध होते हैं। ये आचार्य विद्यासागरजी के समकक्ष रहे। लेकिन अन्तर इतना ही है आचार्य विद्यासागरजी का आचार्यपद 1972 में हुआ और आ. सीमंधरसागरजी को आचार्य पद 1974 में हुआ। इसलिए आचार्य विद्यासागरजी गुरु भाई के नाते वयोवृद्ध आ. सीमंधरसागरजी की स्वास्थ आदि की जानकारी लेकर वात्सल्य प्रकट किया करते थे।

तदुपरान्त कुछ देखी, सुनी खबरों से ज्ञात हुआ कि आ.सीमंधरसागरजी ने मध्यप्रेदश के आष्टा, बानापुरा, बनेड़िया में भी वर्षायोग किये। इसी तरह 17 दिसम्बर 2000 से इन्दौर के उपनगर छावनी में 2001, 2002 का वर्षायोग, छत्रपति नगर में 2003 का, फिर छावनी में 2004 का, जँवरीबाग की नसिया में 2005 का, तिलक नगर में 2006, 2007, 2008 का, इसके बाद एम.एस.जे.

फार्म हाऊस, आदि तथा अन्तिम वर्षायोग बड़नगर में सम्पन्न किया। आपने इस प्रकार करीब 15 वर्षों से अपनी सल्लेखना की साधना हेतु मध्यप्रदेश की भूमि को और यहाँ के श्रावक और व्रतियों की भावनाओं को अपने सुयोग्य उत्कृष्ट समझते हुए उपयुक्त माना था।

आर्जवसागर मुनिराज को दिया आचार्यपद

आपको यह भी खोज थी कि मेरी 12 वर्ष की सल्लेखना सम्पूर्ण होने वाली है और मुझे अपनी चा.च.आ. शान्तिसागरजी की परम्परा के कोई प्रभावक, चारित्रवान, साधक साधु यहीं पर उपलब्ध होंगे, जिन्हें कि मैं अपनी परम्परा का उत्तरदायित्त्व सौंप सकूँगा। जिससे कि हमारे उत्तरदायित्त्व को ग्रहण करने वाले चा.च.आ. शान्तिसागरजी की जयकार ध्वनि हमेशा गुंजायमान करते रहें। वैसा ही योग बना कि कुछ वर्षों से इंदौर के लोग गुरुवर आर्जवसागरजी मुनिराज को आपका स्वास्थ आदि शुभ समाचार देते-लेते रहते थे। एक दिन इस भारत में भद्रबाहु जैसा संघ लेकर विचरण करने वाले चतुर्थ कालीन चर्या के साधक सन्त शिरोमणी आ. विद्यासागरजी महाराज के प्रियतम शिष्य सत्ताईस वर्षों से दीक्षित, बहु भाषाविद् साहित्य सृजक, धर्मप्रभावक मुनिवर आर्जवसागरजी मुनिराज को आपने अपने उत्तरदायित्त्व के योग्य जानकर स्मरण किया और उन्हें अपने पास बुलाया। तब गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज की करुणा देखो कि मात्र करीब 10 दिन में सुबह, शाम विहार करते हुए अपने घुटने का दर्द, और पैरों के छालों को भी न देखते हुए मानो उड़ते पैर ही इतनी सुदूर करीब साढ़े तीन सौ किलोमीटर हरदा से सिद्धवरकूट होते हुए वैय्यावृत्ति और सेवा के निमित्त बड़े वात्सल्य पूर्वक इन्दौर के पास विराजमान आ. सीमंधरसागर जी के पास पहुँचे। आगम में कहते हैं कि अगर कोई मुनि संघ सम्मेद शिखरजी की यात्रा को भी जा रहे हों तो और उन्हें यह ज्ञात हो जाय कि कहीं पर मुनिराज की सल्लेखना चल रही है तो सम्मेद शिखर जैसी महत्त्वपूर्ण यात्रा को स्थगित कर सर्व प्रथम समाधि को देखें। क्योंकि अपने जीवन में भी इसे अवश्य धारण करना है। इससे महत्त्वपूर्ण और क्या कार्य हो सकता है? ऐसे उत्तम समय में क्षपक मुनिराज का दर्शन करना बहुत महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ बात होती है।

आ. सीमंधरसागरजी ने अपनी समाधि का अन्तिम काल निकट जानकर माघ शुक्ल षष्ठी वीर.नि. संवत् 2541 ता. 25.1.2015 को देश, कुल, जाति से शुद्ध मुनिवर आर्जवसागरजी को चतुर्विध संघ के बीच अपना आचार्य पद सौंप दिया। यह समाचार जानकर अपूर्व आनन्द हुआ। हम पहले से ही जानते थे कि जिन्होंने सन् 1984 से बुन्देलखण्ड की भूमि से वैराग्य धारणकर आचार्य विद्यासागरजी संघ को स्वीकारा और उन्हीं गुरु के चरणों में ब्रह्मचर्य व्रत लेकर सप्तम प्रतिमा, और क्षुल्लक, ऐलक तथा मुनि पद को धारण कर इस भारत के तेरह प्रदेशों में अपूर्व प्रभावना की। तथाहि ऐसे गुरुवर आर्जवसागरजी द्वारा **'तीर्थोदय काव्य'** एक अनोखी कृति है जिस में तीर्थंकर बनाने वाली षोडसभावानाओं को सात सौ पद्यों में ज्ञानोदय छन्द और मुरज बंध के भी दोहों के साथ रचा गया है ऐसी कृति कई शताब्दियों से भी देखने को नहीं मिल सकती। इस काव्य कृति में सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण वर्णन और सम्पूर्ण श्रावकाचार और सम्पूर्ण मुनि आचार समाहित है। भव्य लोग मुक्तकण्ठ से इसे गाकर फूले नहीं समाते। वास्तव में गुरुवर की ऐसे ही **'जैनागम संस्कार'** कृति इक्कीस अध्यायों में आठ सौ प्रश्नोत्तरों में है। इसका तमिल, कन्नड़, मराठी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद पूर्वक प्रकाशन हो चुका है। जिसे उत्तर से दक्षिण तक के लोग स्वाध्याय में अध्ययन कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। **'पर्यूषण पीयूष'** तो ऐसी कृति है जिसमें विस्तृत रूप में दश धर्मों पर व्याख्यान किया गया है। साधु, विद्वानों के लिए तो ये बहुत अमूल्य कृति है। इसी तरह वर्तमान परिपेक्ष में जैनदर्शन के अनुसार ध्यान कैसे करना इसके लिए **'सम्यक् ध्यान शतक'** दोहा काव्य में रची गयी है। इसी प्रकार चाहे **'परमार्थसाधना'** कृति हो या **'बचपन का संस्कार'** और **'जैन धर्म में कर्म व्यवस्था'** कृति ये सभी कृतियाँ पचासों शास्त्रों के संदर्भ पूर्वक सारे जैनागम के निचोड़ या सार रूप से रची गई हैं ऐसा समझना चाहिए। गुरुवर द्वारा अनेक भाषाओं में शताधिक कविताओं सह छन्दोबद्ध और छन्द मुक्त कविताओं वाली कृति **'आर्जव कविताएँ'** तो लोक प्रसिद्ध है। इन सबको देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होते हैं इन कृतियों की रचना से गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज को पी.एच.डी. ही नहीं डी.लिट्. की उपाधि देने के समान है, लेकिन साधु चर्या के

सामने ये उपाधियाँ सब नगण्य मानी जाती हैं।

ऐसा तीर्थोदय काव्य सुनाकर हजारों लोगों को सोलहकारण कराने वाले, विभिन्न राज्यों में धार्मिक पाठशालाओं की स्थापना कराने वाले, गोम्मटेश बाहुबली, पोन्नूरमलै, सम्मेदशिखरजी, गिरनार, हस्तिनापुर महावीरजी आदि क्षेत्रों हेतु करीब 15000 कि.मी. विहार करने वाले, अमूल्य कृतियों की रचना और अपनी ओजस्वी वाणी से हजारों सम्यक्दृष्टि बनाने वाले, एक वर्ष तक मौन धारण करने वाले, आडम्बर रहित, कम से कम वस्तु रखने वाले, वृत्ति परिसंख्यान रूप एक चौके में जाने के बाद लौटने पर अलाभ मानने वाले, रसादि में नमक, शक्कर, खोवा, पकवान, विभिन्न मेवों का त्याग करने वाले, हजारों किलोमीटर अनियत विहार करने वाले, विद्वत् संगोष्ठी, डाक्टर्स सम्मेलन, अहिंसा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, धार्मिक पाठशाला सम्मेलन कराने वाले, दशलक्षण पर्व और ग्रीष्मकाल आदि में अनेक शिविर कराने वाले, हिन्दी, तमिल, कन्नड़, मराठी आदि में अनेक काव्य रचना करने वाले, सूर्य प्रकाश में विहार करने वाले, कुएँ के पानी से बने चौके में आहार लेने वाले, कोई धन, वाहन, लौकिक साधन नहीं रखने वाले और जिनके पास हमने उनसे ही दीक्षित सदलगा तक साथ आये मुनिश्री सुभद्रसागरजी को दक्षिण में देखा है। क्षुल्लक तथा ऐलक बने श्री अर्पणसागरजी को देखा है। क्षुल्लक बने श्री हर्षितसागरजी को भी देखा है। इन तीनों को दीक्षित कर अनेक प्रतिमाधारी बनाकर उन ब्रह्मचारी भैय्या, बहिनों को प्रतिमा आदिक के व्रत देकर मोक्षमार्ग बतलाने वाले और जिनके पास से ब्रह्मचर्य व प्रतिमा के व्रत लेकर आगे बढ़े और आचार्यश्री विद्यासागरजी से दीक्षित हुए हैं वे मुनि पायसागरजी व मुनि नमिसागरजी तथा आर्यिका उपशममति और आर्यिका संगतमति बनी। ऐसे धर्म प्रभावक और आत्म साधक; पद की आशा से विरहित, निस्पृह वृत्ति से चर्या करने वाले, गुरु की गरिमा बढ़ाने वाले, गुरुवर 108 आर्जवसागरजी महाराज इस पद के लायक तो पूर्व में ही ज्ञात होते थे। लेकिन किन्हीं लोगों के द्वारा धोखे से भी आचार्य पुकारे जाने पर डाँट लगा दिया करते थे; कि हमारे तो एक ही आचार्य हैं वे हैं आचार्य विद्यासागरजी ऐसा कह दिया करते थे। लेकिन परिस्थिति वश उन्हें किसी आचार्य की आत्मिक शान्ति हेतु उनकी सल्लेखना में उनको निर्भार करने

हेतु यह पद स्वीकार करना पड़ा।

अब जब इतने ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, वयोवृद्ध आ.सीमंधरसागरजी ने जिनको सुयोग्य चुना तो हम उन्हें स्वीकार किये बिना कैसे रहेंगे? और जिनकी प्रभावना एवं ख्याति पूरे भारत में हो चुकी है उन नवीन बने आचार्य आर्जवसागरजी के चरणों में अनेकानेक शुभकामनाओं पूर्वक यही भावना भाते हैं कि आपका रत्नत्रय हमेशा कुशल बना रहे, और आपका संघ बढ़ता रहे, आपकी ख्याति दिग्दिगन्त तक फैलती रहे। वास्तव में सब कुछ गुरुओं के आशीर्वाद का ही फल है। इसलिए कहते हैं कि गुरु कृपा जगत में सबसे निराली है यही हमें खुशहाली है।

हमारे गुरु और हम सबको मिली सेवा ऐसे आ. सीमंधरसागरजी की साधु संघ द्वारा सेवा पाते हुए, चैत्य, सिद्धान्त के घोष के साथ इन्दौर के एम.एस.जे. फार्म हाऊस पर एक उपवन में चतुर्विध संघ के बीच ता. 6.2.15 को मध्यान्ह 12:40 पर तीन दिन के उपवास पूर्वक णमोकार मंत्र और तत्त्वचिंतन के साथ सल्लेखना पूर्ण हुयी। उन्होंने अपनी रत्नत्रय की साधना के फलस्वरूप स्वर्ग को पाकर और विदेहक्षेत्र जाकर सीमंधर, युगमंधर आदि तीर्थंकरों का दर्शन किया होगा, और हम भी यही भावना भाते हैं कि हम सबकी नमोस्तु भी उन तीर्थंकरों तक पहुँच जाय, हमारा भी जीवन धन्य हो जाय।

डॉ. अजित जैन एवं डॉ. संजय जैन, एडवोकेट

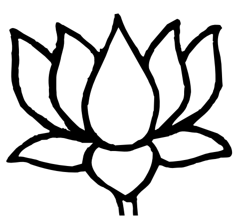

मोक्षार्थियों को सौगात

''आचार्य पूज्य आर्जव प्रणमामि नित्यं''

प्रतिष्ठाचार्य पं. अखिलेश शास्त्री 'रमगढ़ा'

इस अनादि सतत् संसार में अनेकानेक जीवों का मनुष्य भव में आवागमन होता रहता है। दुर्लभता से प्राप्त इस मनुष्य देह को पाकर कई जीव इस मानव देह को सजाने संवारने में बार-2 भोज्य पदार्थों से पुष्ट करने में और कितने ही जीव पंच इन्द्रियों के विषय भोगों में अपने शरीर को लगा कर इस शरीर का भोग बना देते हैं।

वहीं कुछ ऐसे जीव हैं जो संसार की असारता को जाने बिना अपने हिताहित के ज्ञान से शून्य होकर इस शरीर से मिथ्या मार्ग का पोषण करके अपने आपको धर्माधिकारी समझ अभिमान से भरे पड़े हैं।

आज जब पूज्य आचार्य भगवंत जी आर्जवसागरजी महाराज के जीवन को देखा तो वास्तविकता का मान हुआ कि न जाने कितनी बार इन्द्रिय भोगों को पाया परन्तु आज तक शुभ योग से कोई योग्य गुरु को न पा सकने के कारण योगों के एकाग्रकरण को नहीं जान पाया। पूज्य गुरुदेव के दर्शन करके ऐसा लगा मानो गुरुदेव भवों-2 की साधना से ही अपने मन वचन काया को एकाग्र करके तपाराधना कर रहे हैं। विगत 29 वर्षों से अपने कठोर चारित्र से जीव जगत को लाभान्वित कर रहे हैं। जितना कठिन आपका चारित्र है उससे कई गुना आपका जीवन में (आर्जव) गुण समाया है आप में इतनी सरलता है कि आपके सान्निध्य में आने वाला हर जीव आप जैसा ही हो जाता है तभी तो गुरुदेव विद्यासागरजी ने आपको आर्जवसागर नाम प्रदान किया। नाम के साथ-साथ आचार्य गुरुवर ने आप में ऐसे गुणों को आरोपित किया जिन गुणों में कभी हानि नहीं दिखाई देती है। गुरु के साथ-2 ऐसी भाषा को देखिये जिसमे ऐसे संस्कारों को प्रदान कर आपको गुणों के उच्च शिखर तक पहुँचा दिया। यूं तो पारस पत्थर में इतनी शक्ति स्वमेव ही है कि वह अपने निकट आने वाली कुधातु को सुधातु में परिवर्तित कर देती है पर धन्य है वो संसार में भ्रमण करने वाले लोग जो आप सन्निध्य में आते ही वह अपने भवों को ''चुलुक प्रमाणं'' चुल्लु भर पानी की भाँति अल्प कर लेते हैं।

मैंने जगत के जीवों से ही नहीं अपितु आगम ग्रन्थों में पढ़ा कि प्रत्येक नदी सरोवरों से निकलती है और जाकर सागर में मिल जाती है लेकिन मैंने एक ऐसी नदी देखी जो सागर से निकलती है दूसरे सागर से मिल कर उपहार लेकर महासागर की ओर प्रयाण कर रही थी।

पूज्य आ.भ. विद्यासागरजी महाराज रूपी सागर से आर्जवसागर रूपी सरिता निकलती है निरंतर 28 वर्षों से निर्बाध बहती जा रही थी, लाखों जीवों के अन्तस के ताप को शान्त करती हुयी वह सरिता रूपी मुनिवर आर्जवसागर आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी रूपी सागर के पास स्वपर उपकार हेतु गये और उपहार स्वरूप आ. सीमन्धरसागरजी महाराज ने अपने मन में विचार किया कि यही है वह जो महासागर (मोक्ष) की ओर प्रयाण कर रहे हैं क्यों न हम अपने भार को (आ.पद) इन के कन्धों पर उपहार के रूप में प्रदान कर देता हूँ। पूज्य गुरुदेव के द्वारा बार-2 मना करने के बाद भी चा.च. आचार्यश्री शान्तिसागरजी की परम्परा के आ. सीमन्धरसागरजी ने आपके मन पर आचार्य पद का (मनभर) बहुत बड़ा भार डाल दिया और आपने मौन पूर्वक इतने बड़े भार को उठा लिया और पू. तपोनिष्ठ वयोवृद्ध चारित्र वृद्ध समाधि साधक को उनकी अन्तिम यात्रा में निर्विकल्प करके सुख पूर्वक समाधि मरण कराया। और आप आचार्य पद का निर्वहन पूर्ण निष्ठा पूर्वक निर्दोष रूप से कर रहे हैं। आपने मोक्षार्थी अल्पवृद्धजनों को भी दीक्षा प्रदान करके बहुत से जीवों को मुक्ति का मार्ग खोल दिया। यह बड़ी सौगात है वास्तविकता में यदि आपको ''हे मोक्षार्थियों के नाथ'' कहकर पुकारूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि एक आप ही हैं जो जगत के करोड़ों जीवों के प्राणाधार हैं या क्योंकि पंचमकाल में यदि जीवों के प्राण तो वे हैं सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी प्राण और आप उन प्राणों के जनक या रक्षक हैं। आप ही प्राण नाथ हैं, आप ही प्रेरणा स्रोत हैं, आप ही जिनधर्म के शाश्वत अलंकार हैं। आप हैं तभी तो धर्म की निर्दोष प्रभावना निरन्तर हो रही है। आपके आचार्य पदारोहण दिवस पर भक्तिपूर्वक भावना भाता हूँ कि हे गुरुदेव, हे विधाता, आप सदियों तक जयवंत रहें, सदियों तक ऐसे पूज्य गुरुदेव का गुणगान होता रहे।

नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

जैन शासन का हृदय

1- दैव और पुरुषार्थ

मङ्गलाचरण

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।
सर्व मंगल मांगल्यम्, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ।।

इस संसार में प्रत्येक मानव सुख चाहता है और दु:ख से भयभीत होता है परन्तु दु:ख के कारणों को नहीं छोड़ता और सुख के कारणों की प्राप्ति से दूर रहता है और डरता भी है। हमारे आचार्य कहते हैं कि ''कुछ त्याग करने के बाद ही हम कोई नई वस्तु पाते हैं, कुछ पाना है तो कुछ खोना पड़ता ही है।'' भव्य लोग अपने जीवन में पापों को गलाने के लिए पुण्य सम्पादन के लिए और सद्गति पाने के लिए पूजा पाठ आदि अनुष्ठान रचाते हैं। हम पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से अपना जीवन मंगलमय बनायें, अपने अनन्त जन्मों के अर्जित पापों का क्षय हो और हम लोग उन प्रभु जैसे बनकर उन जैसे सुखी बन जायें यही भावना अपने अन्तस् में होना चाहिए।

आचार्य कहते हैं- इस जगत में हम देखते हैं कि जो हमें कई प्रकार के फल मिलते हैं उनमें दैव और पुरुषार्थ की व्यवस्था है; दैव को हम आगे विस्तार से समझ सकते हैं और पुरुषार्थ को आप जानते ही हैं कि जो मेहनत करके लगन के साथ उत्साह पूर्वक कोई कार्य सम्पन्न किया जाता है उसमें पुरुषार्थ की मुख्यता रहती है। और अनायास ही जो कुछ हो जाया करता है या बहुत कुछ करने पर भी नहीं होता चाहे अच्छा हो या बुरा उसे दैव कहते हैं उसे ही कर्म या भाग्य भी कहा जा सकता है।''आचार्य समन्तभद्र स्वामी'' कहते हैं कि-

अबुद्धि पूर्वापेक्षाया, निष्ठा निष्ठं स्वदेवता:।
बुद्धि पूर्वाप्यापेक्षा, निष्ठा निष्ठस्य पौरुषं॥

'आप्तमीमांसा' में ऐसा कहा है कि पूर्व में ऐसा कुछ विचार न करने पर

भी जब कभी अकस्मात् अनिष्ट या इष्ट रूप घटना घटती है तब उसमें दैव की प्रधानता रहती है और तब पुरुषार्थ को गौण समझा जाता है जैसे कि- अकस्मात् भूमि को खोदने पर धन की प्राप्ति अथवा अकस्मात् यात्रा करते हुए दुर्घटना या अकस्मात् मरण इसके उदाहरण हैं। उसी प्रकार पूर्वापर विचार करते हुए जो इष्ट अनिष्ट फल प्राप्त होता है उसमें पुरुषार्थ की प्रधानता रहती है और दैव की गौणता समझना चाहिए जैसे कि- व्यापार आदि से धन प्राप्त करना या विष भक्षण आदि के द्वारा मरण को प्राप्त होना। इस प्रकार हम दैव और पुरुषार्थ दो चीजें समझ रहे हैं यहाँ हम देखते हैं इस जगत में कई कार्यों में लोग बहुत पुरुषार्थ करते हैं और पुरुषार्थ करते-करते भी वह कार्य नहीं हो पाता तो क्या समझना चाहिए कि कर्म बहुत बलवान है, वो जैसा चाहेगा वैसा करायेगा भी दिखायेगा भी। हमारा पुरुषार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकता अर्थात् जैसा निकाचित कर्म होगा वह वैसा ही फल चखायेगा।

एक बेटा जो कि बहुत गरीब परिवार का था। कारण ये था कि जो पूर्व में नगर सेठ कहलाते थे लेकिन पूर्वकृत किसी अशुभ कर्म की वजह से उनको व्यापार में अत्याधिक घाटा हुआ। इसकी वजह से वे दिवालिया हो गये, आभरण चले गये, वस्तुयें चली गईं, धीरे-धीरे घर चला गया और बाहर जाना पड़ा। अन्त में बाहर जाने के बाद जब कुछ भी पास नहीं रहा, कोई सहारा नहीं दिखा तो कर्म क्या-क्या नहीं करवाता देखो? एक ही बात शेष रही थी लेकिन उस कर्म ने ये भी करा दिया देखो कि भिक्षा से ही जीवन चलाने लगा, भीख मांग कर खाने लगे। भीख कभी-कभी मिल जाय कभी नहीं भी। धीरे-धीरे पिता का भी मरण हो गया। (एक बेटे का भी मरण हो गया।) पत्नी अकेली ही बेटे को पालती है और बेटे से बोलती है जाओ कुछ तो काम करो। अब तुम 8-10 वर्ष के हो गये हो; तो बेटा चला गया किसी धनी के यहाँ-वहाँ खेत में काम करता है। देखने में अच्छा लगता है; तो लगता है कि अच्छा कुल वाला है। सेठ एक दिन सबको कुछ मजूरी दे रहा था तो देते वक्त देखा कि ये बालक कौन है? वस्त्र भी पुराने हैं, फटे हैं, वह देखता है ये बालक कौन हो सकता है, पूछा हे बेटा! रुको, इधर आओ, मैं जो कुछ पूछता हूँ उत्तर देओ। तुम्हें जो कुछ दिया है

वह तो बहुत कम है और भी इच्छा होती है कि तुम्हें और भी कुछ दे दें। परिचय दो, बेटे ने अपना परिचय दिया कि मैं उनके बेटा हूँ, उनका ये नाम था, अरे वे तो नगर सेठ थे। गरीबी कैसे आ गई? गाँव छोड़ के रहते हो; वो हमारे मित्र थे, हम तुम्हें कुछ और देंगे। सबके जाने के बाद करुणा आई और उसे एक हाथ पर सोने की मुहरें दी, ज्यों ही सोने की मोहरें दी वे अंगार बन गईं और हाथ जल गये। अरे! इसका कर्म कितना प्रबल है? ऐसा सोचते हैं क्या कहें बच्चा छोटा है, चलो पोटली भर के चने ले लो। चने दे दिये और वह चलता गया, वस्त्र फटा था, रास्ते भर चने गिरते चले गये। माँ के पास पहुँचा। माँ ने सोचा; चलो, सुबह से बेटा गया था अब आया है, कुछ लाया होगा। हम इतने बड़े घर के थे काम पर भी नहीं जा सकते बाहर। ऐसा सोचती है। बेटे को दरवाजा खोलती है, बेटा! क्या लाये? और देखती है, एक-डेढ़ मुट्ठी चने हैं बस; इतना ही दिया दिन भर की मेहनत के बाद? नहीं माँ, दिया तो बहुत था अशर्फियाँ दी थीं मगर अंगार बन गयीं फिर क्या दिया? एक पोटली भर चने दिये थे लेकिन वस्त्र फटा हुआ था इसलिए सब गिर गये मात्र इतने ही बचे। बेटा! क्या कहें तुम्हारा भाग्य? जबसे तुम आये, तुमने जन्म लिया तबसे कितने अपशकुन हुये, घर चला गया, सम्पत्ति चली गई और तेरे पिता भी चले गये और अभी तक तेरा कर्म तुझे नहीं छोड़ रहा है। एक पोटली चने भी एक डेढ़ मुट्ठी बचे। कर्म किसी को नहीं छोड़ता। माँ तो पुरुषार्थ कर रही है मगर उसे दैव नहीं छोड़ रहा है दैव मतलब कर्म उसे नहीं छोड़ रहा है। भाग्य भी कैसा? कैसा कर्म था? कि ऐसा फल चखाया। घर में आते ही पूरा घर बरबाद हो गया। सब दर-दर भटकने लगे और सब कुछ मिलने के बाद भी वह हाथ में नहीं आ रहा था। कर्म बहुत बलवान होता है। हम लोग कई बार ऐसे कर्म बांध लेते हैं अपने भावों से, तीव्र कषायों के साथ, उनका फल भी बहुत कड़वा होता है तो विचार करना है कभी पुरुषार्थ का फल हमें मिलता है तो कभी-कभी दैव हमें तरह-तरह के फल चखा देता है। हम वहाँ भी थोड़ा देखें कि वे राम जब इतना पुरुषार्थ करके सीता के लिए सुविधाएँ जुटाते हैं और लक्ष्मण भी अपनी रेखा खींच कर चले गये जंगल में राम को ढूढ़ने; कितना तीव्र कर्म का उदय था कि उनका पुरुषार्थ भी फेल हो गया,

सीता का हरण हो गया। और हर ले गया रावण। कैसा तीव्र कर्म था सीता का, कि वह रेखा भी क्या करती। रेखा तो बाहर से अन्दर आने वालों के लिए खीचीं गई थी, अन्दर से बाहर आने वाले के लिए नहीं। ऐसा तीव्र कर्म था, कहा था अन्दर से बाहर मत आना और सीता का बाहर आना हुआ और आते ही हरण हो गया। फिर राम ने पुरुषार्थ किया और फल भी पाया कि सीता को लाने के लिए पुल बनाया फिर युद्ध किया और सीता को वापिस लाये यह पुरुषार्थ का फल पाया। ऐसे ही बैठे रहते तो कैसे काम-चलता। दैव गौण हो गया पुरुषार्थ मुख्य हो गया। पहले पुरुषार्थ गौण हो गया था दैव मुख्य हो गया था। अब देख लो सीता को लेकर अपने नगर तो चले लेकिन अपवाद होगा अपवाद के कुछ निमित्त बनेंगे। इसलिए क्या करना; लोग कहेंगे कि पर घर में गई नारी को एक राजा ने घर में रख लिया।

राम ने यह विचार किया कि जनता क्या सोचेगी? गलत परम्परा चलेगी? इसलिए सीता को दण्डकारण्य में छोड़ दिया। उन्होंने पुरुषार्थ किया लेकिन अब पुन: दैव मुख्य हो गया। सीता का कर्म इतना प्रबल था। एक सेनापति को बोला जाओ सीता को जंगल में छोड़ कर आना है। स्वामी! आप क्या कर रहे हैं? इतने सुकोमल-नाजुक शरीर वाली महलों में रहने वाल सीता माता; जिन्हें जंगल में छोड़ कर आना है, हे स्वामिन्! हम छोड़ कर तो आयेंगे लेकिन जंगल के दु:ख को वे कैसे सहेंगी? महलों में रहने वाली रानी को जंगल में छोड़ेंगे तो ऐसा बड़ा पाप, स्वामिन्! ऐसा अक्षम्य अपराध मुझसे नहीं हो सकता। राम ने कहा यह मेरा आदेश है। सीता को मैं घर में नहीं रखूंगा। सीता का कर्म बड़ा प्रबल था। दण्डकारण्य में छुड़वाने के लिए बोला गया था तो वह सेनापति गया तो मगर रोते-रोते गया। और छोड़कर पैरों में पड़कर बोला, माता मुझे क्षमा कर दो। तब सीता माता ने एक ही बात कही- ''राम को कह देना कि जैसे तुमने मुझे छोड़ दिया वैसे तुम धर्म को मत छोड़ देना''। मुझे छोड़ दिया तो छोड़ दिया धर्म मत छोड़ देना ऐसी बात कही। सेनापति बहुत रोया। इतने शील धर्म का पालन करने वाली सीता; फिर भी राम ने जंगल में छोड़ दिया। राम का कोई दोष नहीं है वे राम तो राजा हैं। राजा कभी भी अपने जीवन में अपवाद को पसंद नहीं करते।

इसलिए उन्होंने सीता को जंगल में छुड़वा दिया। ये संदेश कैसे पहुँचाये वहाँ तक, संदेश पहुँचाने के लिए महल तक जाना पड़ेगा; नहीं तो मैं ऐसे पाप का क्षय करने लिए जंगल में यहीं रह जाता। अब तो ऐस पाप को निकालने के लिए एक ही मार्ग होगा ''जिन दीक्षा''। तभी मेरा यह पाप निकल सकता है और उसने निश्चित कर लिया मैं तो जिनदीक्षा लूंगा। स्वामी! मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया आज तक हमारा आपसे व्यवहार था आज के बाद मेरा आपसे कोई व्यवहार नहीं है। क्षमा मांगते हुए पश्चाताप करता है। मैं व्यवहार नहीं करूँगा मैं निश्चय में जा रहा हूँ। कैसा है ये व्यवहार? कैसा है ये संसार? इस संसार में सुख दु:ख कैसे लगे हैं? ऐसे सुख दु:ख को समाप्त करना है। मैं शाश्वत सुख को प्राप्त करूँगा। ऐसी निर्दोष अबला को, सीता को, मैंने जंगल में छोड़ा। किस जन्म का उसका कर्म था? उसका भी पूर्व जन्म का कर्म था। आप जानते हैं क्या कर्म था? एक बहिन और एक भाई जो कि दोनों मुनि और आर्यिका थे; इनका एक जगह रहना गलत है कैसे ये शीलवंत हो सकते हैं। ऐसी शंका की, संदेह किया। बुरी बात का संदेह कर लेना। उसका अपवाद करना, निन्दा कर देना सरल नहीं, शील के अपवाद के कारण ऐसा हुआ कि उसने कितने वर्षों तक आँसू बहाये। उस पाप के फल को हटाने का कोई पुरुषार्थ भी वहाँ कुछ नहीं कर सकता था लेकिन सन्देशा दिया राम को सीता माता ने जो कहा था कि धर्म को मत छोड़ देना। राम ने कहा- धर्म रक्षा के लिए ही सब कुछ कर रहा हूँ। और वह राम को देखते-देखते चला जाता है उनकी तरफ पीठ नहीं करता है चला जाता है और दीक्षा लेता है मुनि बनकर तपस्या करने लग जाता है। मैंने अनंत जन्मों से पाप किया है वो अलग और इस जनम में निर्दोष आत्मा को जंगल में छोड़ा है न जाने वे कितने कष्टों को सहेंगी। प्रभु की आज्ञा से छोड़ा था उस सेनापति ने और मुनि दीक्षा भी धारण कर ली। ऐसे उस सेनापति का नाम था कृतान्तवक्र। अपने जीवन में हमें कैसी भावनायें भानी हैं। हम अपने जीवन में कैसे कठोर कर्मों को बांधते हैं कि फिर पुरुषार्थ भी कुछ नहीं चल सकता। आप संसार के बन्धन में हैं इसलिए अधिक कुछ नहीं कहेंगे लेकिन कर्म सिद्धान्त को समझो इतना जरूर कहना पड़ेगा। जब हम बहुत पुरुषार्थ करने के

बाद भी सफल न हो तो उसे दैव कहेंगे। पुरुषार्थ तो फिर भी करना चाहिए। कर्म बहुत कठोर होते हैं मगर पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिए। उस आत्मा ने कैसा कठोर कर्म बांधा था कि स्वर्ण की मुहरें भी अंगार बन गई। इतना सब मिलने के बाद भी भिखारी का भिखारी ही बन कर रह गया। चने भी सब गिर गये। माँ धिक्कारने लगी कि तेरे आने से सब ऐसा हो रहा है तूने कोई पुण्य ही नहीं किया। तू अकृत पुण्य है अर्थात् कोई पुण्य नहीं किया। ऐसा पूर्व कर्म क्या था तो बतायें आपको कि उसने पूर्व भव में मंदिर का धन खाया था, निर्माल्य खाया था। मंदिर के कुएँ के पानी को पीने की बात नहीं कर रहा हूँ। मंदिर का दान समय पर नहीं देना, मंदिर का दान द्रव्य अपने क्षेत्र में लेकर उपयोग करना ये सब निर्माल्य है इस निर्माल्य सेवन के पाप कर्म से उसको इतना कष्ट मिला। इसलिए हमको न्याय नीति पूर्वक उत्साह व लगन के साथ धर्म पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

किसी ने अच्छा कहा है–

दीप निष्ठा का जले तो आंधियाँ बाधक न होंगीं।
आदमी में अगर लगन हो तो मजबूरियाँ बाधक न होंगीं॥
हारते हैं वे जिन्हें अपने पर विश्वास नहीं है।
चल पड़े सही पथ पर पथिक तो, दुनिया बाधक न होगी॥

– महावीर भगवान की जय –

2– नियत और अनियत

मङ्गलाचरण

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते ॥

सद्धर्म बन्धुओं; संसार में रहने वाली आत्मायें किसी न किसी पुरुषार्थ में संलग्न हैं। किसी का पुरुषार्थ धर्म कमाने में है तो कोई अपने को मोक्षमार्ग पर चलाने में पुरुषार्थ करता है। कोई अपने लिए तरह–तरह के वैभव सम्पत्तियाँ आदि के निमित्त अपने कदम संसार की ओर बढ़ा रहा है। ऐसा हम सभी जगह देख रहे हैं। हमें ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं जो संसार से भयभीत होकर के मोक्षपथ की ओर अपने कदम बढ़ाते हैं। इस संसार में ऐसे बहुत कम जीव होते हैं जो अपने पुरुषार्थ से अपने कर्मों का क्षय, क्षयोपशम, उपशम करके मोक्षमार्ग को प्राप्त करते हैं। ऐसी वे आत्मायें भव्य आत्मायें हैं, और बहुत–सी जो आत्मायें अभी मोक्षमार्ग में नहीं आई हैं उनमें भी कई भव्य आत्मायें हैं। अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी हो गये और अभी भी ऐसे अनन्तान्त भव्य जीव हैं जो पुरुषार्थ के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करेंगे। पुरुषार्थ के साथ कर्म कुछ नहीं करता ऐसा नहीं है। कर्म हर जगह जुड़ा हुआ है। दैव का सहारा हर जगह है। कर्म के माध्यम से ही हमारा पुरुषार्थ सम्पूर्णता को प्राप्त करता है। चाहे पुरुषार्थ से काम हुआ हो चाहे और भी किसी काल लब्धि से, सब कर्म की देन है। जिसके माध्यम से कार्य सम्पन्न होता है। कभी तो बिना यत्न किये कोई कार्य सम्पन्न हो जाता है सो हम बोलते हैं दैव कर्म प्रमुख है।

कर्म पुरुषार्थ के बल से हम अपने कर्म को प्रबल करते हैं। जो कर्म हमारा पतला है उसे हम गाढ़ा करते हैं। पुरुषार्थ के बल से जल्दी उदय में लाते हैं। इसमें पुरुषार्थ की प्रमुखता होती है लेकिन सभी आज तक पुरुषार्थ से ही हुआ है ऐसा नहीं है। कर्म तो उसके साथ लगा हुआ है। जो व्यक्ति केवल कर्म पर ही छोड़ देते हैं सब कुछ, कि कर्म जब जैसा होगा वैसा तब हो जायेगा, जो जिस काल में होना होगा वैसा ही वह उस तरह से घट जायेगा सो वह बिना पुरुषार्थ के निकम्मे बैठे रहते हैं। कर्म को आप देखते बैठेंगे आपको क्या मालूम कि वह

कब उदय में आता है तो उसमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं है, मोक्ष का प्रयोजन तो बिलकुल सिद्ध नहीं है। क्या कर्म की उदीरणा भी तो होती है। मोक्ष के प्रयोजन के लिए तो हमें अकाल में कर्म क्षय करना होगा तभी मुक्ति रूप प्रयोजन सिद्ध होगा इसमें पुरुषार्थ बहुत जरूरी है। आम पेड़ पर पकता है; ठीक है; मगर पेड़ से एक माह पहले तोड़ लिया और पाल में पका लिया तो यह पुरुषार्थ है। कर्म स्वयं समय से उदय में आयेंगे और उसके साथ नये कर्म भी बंधते चले जायेंगे। आप कोई पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो उदीरणा द्वारा कर्म समय के पहले उदय में नहीं आयेगा तो मोक्ष पाने में कितना काल लगेगा? वे कर्म कब उदय में आयेंगे, कब फल देंगे? ऐसा तो हमारा ये संसार बढ़ता ही चला जायेगा। ऐसे कर्मों को उदय में लाकर पहले ही उदीरणा कराना और क्षय करना अविपाक निर्जरा है।

जब पुरुषार्थ के पहले ही कुछ कार्य होता है तो कर्म की प्रबलता मानी जाती है जैसे बिना कुछ किये धन आदिक मिलता चला जाता है। एक आत्मा जिसके घर में बहुत गरीबी थी और वह एक बार ज्यों ही अपने जीवन में अचानक ही एक वस्तु की प्राप्ति करती है और उसे लगता है कर्म कितना प्रबल है। सब सोचते हैं घर में कितनी गरीबी है इसका कोई उपाय निकल आये। एक व्यक्ति अचानक ही जा रहा था, सोचा इसके हाथ में कुछ वस्तु है, चलो अपन खरीदें पूछा, भैया! कितने में आयेगी? ले ली, लकड़ी थी। लकड़ी में देखा, लकड़ी के अन्दर रत्न निकले। वो रत्न कैसे मिले? सोचने लगा, राजा के पास से आई हो लगता है पुरानी वस्तु होगी। रत्न मिल गये कितना लाभ हो गया अचानक ही, घर वालों का काम हो जायेगा इसे उन्हें दे दें और भाग्य की बात है परिवार वाले सुख में रहेंगे। बिना मांगे परिवार वालों को दे दिया और वह चल दिया। यात्रा के लिए, आगे जाकर के देखा एक व्यक्ति खेत में काम कर रहा है। उसको सहारा देकर के भैया तुम भोजन कर लो, मैं तुम्हारा काम कर दूँगा। और काम करने लगा और खेत में ही एक कोने में घड़ा निकल आया उसमें रत्न मिले। बहुत आनंद हुआ कि ये रत्न कहाँ से आये? यह तो किसी विशेष पुण्य उदय से मिला है। कोई सेठ थे उन्होंने कभी भविष्य के लिए गाड़ रखी थी? सो मिल गई और आगे जाकर राजदरबार में बहुत अच्छी वीणा थी, सुन्दर वीणा

थी, और राजा के मन में आया कि जो सुन्दर ढंग से वीणा बजायेगा उसे यह राज्य मिलेगा, साथ मेरी कन्या भी दी जायेगी। वीणा मुझे चाहिए, विचार किया बड़े सुन्दर ढंग से वीणा बजाई, तो वीणा भी मिल गई और कन्या भी मिल गई, और उसे राज्य का कार्यभार भी सौंप दिया।

आपको यह समझना था कि दैव, जिसको भाग्य बोलते हैं, जब प्रमुख होता है तो बिना पुरुषार्थ के सब कुछ मिलता चला जाता और देखो ये राज्य अनायास ही उसे मिल गया वह सोचता है कि यह हमारा कितना तीव्र पुण्य है चलो यहीं पर अपने परिवार वालों को भी बुला लो और बुलाकर सबको सुख समृद्ध कर दिया।

आप जानते हैंकि यह धन्यकुमार की कथा है। यह दैव की प्रमुखता का उदाहरण है। जिनकी वजह से सारा परिवार धन्य हो गया और राजा भी उनको पाकर के अति धन्य हो गया ऐसी आत्मा से सबक लें कि पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों का फल हम लोग इस जन्म में पाते हैं। और अनायास ही हमें मिल जाता है तो ऐसा दैव कहा जाता है और हम दैव को देखते बैठे कुछ कर्त्तव्य न करें तो फिर उसे निकम्मा बोला जाता है। अत: सबका सार यही है कि पुरुषार्थ हीन कभी नहीं बनना चाहिए। पुरुषार्थ को हमेशा याद रखना चाहिए क्योंकि हम जानते ही हैं कि इस जगत में जो-जो द्रव्य हैं उन सभी का ज्ञान हमारे केवली भगवान को है। वे जानते हैं उनके सभी पर्यायों को और गुणों को लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि जो पर्यायें अभी घटित नहीं हुई हैं। जो पर्यायें भविष्य सम्बन्धी पर्यायें हैं उनके बारे में हम यह कह सकते हैं कि वे अनियत भी होती हैं नियत भी होती हैं। इसलिए ऐसा चिंतन करें कि जो नियत पर्यायें हैं उनमें कोई परिवर्तन होना शक्य नहीं है; लेकिन अनियत में पुरुषार्थ के द्वारा परिवर्तन संभव है।

कह दिया था कि इतने वर्ष के बाद द्वारिका भस्म हो जाएगी। ये नेमिनाथ भगवान की दिव्य ध्वनि में आ गया। तो नियत पर्याय में कुछ ऐसा ही होता है, कुछ पर्यायों के ऐसे प्रभाव होते हैं या उनके माध्यम से ऐसा घटित होता है इस माध्यम से ही उन आत्माओं को निकाचित उस कर्म का फल मिलने वाला है।

उसमें पुरुषार्थ कुछ नही कर सकता। लेकिन सभी पर्यायें नियत ही होती हैं ऐसा नहीं है कुछ पर्यायें अनयित भी होती हैं लेकिन पहले नियत के बारे में कह दूँ कि वहाँ लोगों ने सोचा कि क्या ऐसा हो सकता है कि उन सब लोगों का ऐसा कर्म हो? या जिनका कर्म होगा वे वहाँ पर रहेंगे और वैसा घट जायेगा। जब लोगों ने सोचा कि 12 वर्ष हो गये हैं अब क्या होगा। लेकिन जो होना था वो हुआ, जिनके साथ होना था वह अवश्य ही हुआ।

अनियत जो पर्यायें होती हैं उनमें पुरुषार्थ भी अपना काम करता है। आप यह जानते हैं कि जब आदि प्रभु तेरासी लाख पूर्व वर्ष होने के बाद भी वैरागी नहीं हुये तब वह सौधर्म इन्द्र चिन्तातुर हो गया, कि हमारे प्रभु को अभी तक वैराग्य क्यों नही हो रहा है? इस चिंता से वह आतुर है। बहुत सारी जनता का कल्याण होना है वह कैसे होगा। हमें कुछ तो उपाय करना चाहिए। इसलिए वह एक ऐसी नृत्यकारिणी को सामने लाता है जिसकी आयु अल्प थी, बहुत कम थी और जब वह राज्य सभा में नृत्य कर रही थी तो नृत्य-नृत्य करते-करते ही उसकी आयु समाप्त हो गई और वह नीचे गिर गई। बस यह दृश्य देखते ही आदिप्रभु के मन में वैराग्य का चिंतन प्रारम्भ हो जाता है। एक निमित्त सामने आया था तो काम हो गया। इसलिए उसने सोचा था कि एक निमित्त सामने ले जाकर देखें इसमें कुछ होता है कि नहीं, नहीं तो दूसरी बात सोचेंगे। उस निमित्त ने अपना असर किया और जग की असारता के बारे में चिंतन प्रारम्भ हो गया, सबका ऐसा ही मरण होना है वैराग्य हो गया मैं क्या कर रहा हूँ, क्या करना था, किसलिए आया था? चिंतन प्रारम्भ हुआ और वैरागी बनकर के निकल गये जंगल की ओर। आप जानते हैं कि आदिनाथ प्रभु का दीक्षा कल्याणक हुआ और बाद में तपस्या में लीन हो गये। ये क्या है? पुरुषार्थ। कुछ बातें अनियत भी होती हैं। उनके बारे में पुरुषार्थ करना चाहिए। अगर इन्द्र ऐसा पुरुषार्थ न करता, तो फिर क्या होता चिन्ता का विषय हो जाता।

एक जगह और देख लो, छयासठ दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी केवलज्ञान होने के बाद; चिन्ता हो गई। भव्य जीवों का क्या होगा। समवशरण की रचना हो गई और दिव्यध्वनि नहीं खिरती। अगर खिरना निश्चित होता और

कब खिरेगी ऐसा निश्चित होता तो इन्द्र को यह पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होती; कि वह वहाँ जाये जहाँ वह गौतम गोत्र वाला इन्द्रभूति गौतम, ज्ञानमद का पोषक 500 शिष्यों के साथ बैठा है। कहता है- कौन है मुझ सम ज्ञानी। मुझे सर्व वेद-शास्त्रों का ज्ञान है, मुझे शास्त्रार्थ में कौन परास्त कर सकता है? कोई नहीं, ऐसा मद को धारण करके बैठा था। इन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में वहाँ उसके सामने जाकर प्रश्न किये कि सप्त तत्त्व कौन-से हैं? षट् द्रव्य क्या हैं? नौ पदार्थ किनको बोलते हैं? पंचास्तिकाय क्या हैं? जब उस गौतम ने सुना तो उसे लगा पहली बार सुन रहा हूँ ऐसे शब्द; सोच विचार करने लगा उत्तर नहीं दे पाया और उलटा इन्द्र को पूछा कि ऐसा जानने वाला कोई है क्या पृथ्वी पर? बोले हाँ। कौन है? महावीर! महावीर कौन है? चलो दिखाता हूँ। और रास्ते चल दिया। जाते-जाते मार्ग में मन्द-मन्द सुगंधित वायु बह रही है, चारों ओर वृष्टि हो रही है, दुन्दुभी वाद्य बज रहे हैं सर्व ऋतुओं फल-फूल युगपत् आ गये थे। यह सब देखकर के मालूम पड़ गया कि कोई महान आत्मा है पास में; आते ही ज्यों समवशरण में प्रवेश किया तो महान वीतराग प्रभु के दर्शन हो गये। सामने देखा तो विशाल मानस्तम्भ दिखा जिसमें वीतराग भगवान की प्रतिमाएँ देखते ही उसका मान चूर-चूर हो गया। मिथ्यात्त्व के टुकड़े-टुकड़े हो गये। साष्टांग नमस्कार किया। समवसरण में जाने के लिए सम्यग्दर्शन रूपी टिकट मिल गयी। क्योंकि समवशरण में अन्दर की ओर जो प्रवेश मिला वह बिना सम्यग्दर्शन के नहीं हो सकता था। मानस्तम्भ देखने के बाद भी अगर सम्यग्दर्शन प्राप्त न हो तो फिर तो मुश्किल है। ध्यान रखना पुरुषार्थ की जरूरत है। समवशरण में प्रवेश किया। अन्दर जाकर प्रभु का दर्शन किया। तीन प्रदक्षिणायें दीं नमस्कार किया। नमस्कार करते ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। ये ही सच्चे भगवान, सच्चे गुण हैं दूसरा और नहीं इस जगत में कोई। आत्मा का कल्याण करने वाला यही सच्चा धर्म है। मुझे तुरन्त इसकी शरण में जाना चाहिए। दीक्षा लेने का भाव हुआ और दीक्षा भी ले ली। और मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इन चार ज्ञान के धारी हो गये। यह दिन गुरु पूर्णिमा और दूसरे दिन से दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हो जाती है जो वीर शासन जयन्ती नाम से मनाई जाने

लग जाती है। जैसे सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर पाता है, वैसे ही प्रभु की वाणी को झेलने के लिए पात्र चाहिए था। पात्र के बिना दिव्य ध्वनि नहीं खिरी और अब दिव्यध्वनि खिरी गणधर परमेष्ठी ने सबको अर्थ बतलाया उन्होंने दिव्यध्वनि को झेलकर ग्रन्थ की रचना की। इसप्रकार वे इन्द्रभूति गौतम प्रधान गणधर बन गये। इस प्रकार यहाँ पुरुषार्थ की मुख्यता देखो।

ऐसा पुरुषार्थ किया इन्द्र ने, तब काम हो पाया, नहीं तो और कितने दिन निकल सकते थे इसलिए कई लोग विचार करके बैठे रहते हैं कि जिस काल में जो होना होगा वैसा होगा। काल लब्धि आयेगी तब होगा। ऐसे शब्द जो कहते हैं उन्हें इतना चिंतन करते रहना चाहिए कि कुछ पर्यायें अनियत भी होती हैं। उनके अनियत पर्यायों को हम लोग कभी भी नहीं जान सकते कि किस रूप में घटने वाली हैं आगे। केवली भगवान एक-एक पदार्थ को युगपत जानते हैं यही तो अनेकान्त है। तो हमें ये विचार करना चाहिए कि कुछ पर्यायें जो अनियत हैं उनके बारे में हमें भी ऐसा विचार करना है जो जब जैसा होना है सो होगा।

"जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे!" ऐसा कोई जो बोलते हैं तो ये पक्तियाँ किसी विद्वान के द्वारा बनाई गई हैं। आर्ष परम्परा के कोई निर्ग्रन्थ आचार्य द्वारा नहीं। नियत पर्यायों की अपेक्षा भले ही घटित हो जाये लेकिन अनियत की अपेक्षा से घटित नहीं होती है। ध्यान रखना इसमें कुछ सुधार की भी आवश्यकता है। आप लोग इस विषय को कुछ गहराई से और समझें मैं एक और उदाहरण रख रहा हूँ जिससे सरल रीति से आप समझ जायेंगे।

भगवान महावीर का समवशरण लगा हुआ है और दिव्यध्वनि सुनने के लिए कई भव्य आत्मायें जाती हैं और एक श्रावक श्रेष्ठी भी जा रहे थे। उन्होंने जाते समय जंगल के रास्ते में एक मुनिराज को देखा वे शिला पर बैठे थे चूंकि आसन तो हमारे जिन भगवान जैसा ही था। जिन आसन में विराजमान हाथ पर हाथ रखे बैठे हुए थे फिर भी मुख मुद्रा म्लान थी, विकृत मुद्रा थी। जैसी नहीं होनी चाहिए वैसी थी। उस मुद्रा को देख करके उनके मन में पीड़ा हुई। क्या बात है मुनि महाराज की ऐसी मुद्रा नहीं होना चाहिए। कुछ तो भी जरूर घट रहा है जो इनके कष्ट का कारण है अथवा कोई न कोई विशेष बात होना चाहिए।

बिना किसी कारण के ऐसी मुद्रा नहीं हो सकती इसलिए उन्होंने समवशरण में पहुँचते ही गणधर परमेष्ठी से प्रश्न किया कि हे प्रभु! हमने समवशरण में आते समय रास्ते में एक मुनि महाराज को देखा उनकी मुद्रा विकृत थी जो कि वैसी नहीं होनी चाहिए। प्रभु क्या कारण है? बता दीजिए। आप लोग अनियत के विषय पर समझ रहे हैं, उन्होंने कहा- वे मुनि महाराज नरक में भी जा सकते हैं और वे ही मुनि महाराज केवलज्ञान की प्राप्ति भी कर सकते। श्रावक श्रेष्ठी ने कहा- प्रभु कैसे? प्रभु गणधर परमेष्ठी ने बताया- क्योंकि वे तो अवधिज्ञानी मन:पर्यय ज्ञानी थे ही उन्होंने कहा कि वे मुनिराज आहार चर्या को गये थे वहाँ चर्चा चल रही थी कि देखो ये महाराज अपने एक छोटे से बेटे को राज्य देकर के मुनि बन गये और मंत्री (शत्रु)लोगों ने उस बेटे को बांधकर कारागृह में डाल दिया और राज्य को बांटने की तैयारी चल रही है और सब मंत्री उस राज वैभव को अपना-अपना बना लेंगे। यह सुनते मुनिराज ने सोचा कि मेरे कारण सब जीवों को इतना कष्ट, अब आहार कैसे करें? आ गये सीधे-सीधे आकर के उपवास लेकर के बैठ गये। मन को बहुत सम्हाल रहे थे ऐसा विचार न आये लेकिन किसी-किसी का कर्म उदय ऐसा रहता है। सबको नहीं रहता देखो आप सोचें बीच में ही उदाहरण याद आ रहे हैं कि पांच पाण्डव में से तीन को कोई विकल्प नहीं आया, मेरे भाई का नहीं; अन्य मुनि महाराज का कि क्या हो रहा होगा? दो को मात्र चिंतन आया मेरे बाजू वाले मुनिराजों का क्या हो रहा होगा? दूसरे का विकल्प आया प्रशस्त राग हो गया तो मोक्ष नहीं पहुँच पाये। बल्कि साधिक (कुछ अधिक) तैंतीस सागरोपम तक मोक्ष नहीं मिलेगा। लटक गये उतने काल के लिए उसके बाद आयेंगे, मनुष्य बन मुनि बनेंगे फिर मोक्ष जायेंगे। पर की चिन्ता की; चाहे मुनिराज की चिन्ता की तो भी लटक गये। पर की चिन्ता नहीं करना चाहिए। अहं आत्मा में लीन होना चाहिए। सोहं भी नहीं चलेगा। पहले उदासोहं, फिर दासोहं, फिर सोहं फिर अहं रूप एक में लीन होना कि बस मैं एक ही हूँ। मेरा दूसरा कोई नहीं, आत्मा एक ही है मेरा बस। जैसे समयसार में कहा है कि-

अहमिक्को खलु सुद्धो, दसंण णाणमइयो सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणु मित्तंपि॥

मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ और ज्ञान दर्शन मय सदा अरूपी हूँ, अन्य परमाणु मात्र भी मेरा कुछ भी नहीं है। ऐसा तीनों ने चिंतन कर लिया तो उन्हें मोक्ष हो गया। अपनी आत्मा को छोड़कर किसी का भी चिंतन नहीं आना चाहिए। कोई विकल्प नहीं आना चाहिए। जैसा कि कहा ही है:-

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट हैं, पर हैं परिजन लोय॥

तो वहाँ पर ऐसे विचार करने से 33 सागरोपम तक रुकना हो गया। वैसे ही वहाँ उन विकृत मुद्रा वाले मुनिराज का चिंतन चल रहा था कि मेरे द्वारा छोड़े गये परिवार कुटुम्बियों को कष्ट हो रहा है। मंत्रियों ने ऐसा क्यों किया? ऐसा धोखा क्यों दिया? ऐसा छल क्यों किया? मन में ऐसा विकल्प चल रहा था लगता है कि परिग्रहानन्दी नाम के रौद्रध्यान में लीन हो गये थे वे महाराज तत्त्वार्थ सूत्र में कहा ही है कि-

''बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'' बहुत आरम्भ व परिग्रह नरकायु का कारण है। गणधर परमेष्ठी ने भी यही कहा कि श्रावक श्रेष्ठी सुनो! कि तुम्हें उन्हें सम्बोधन करना होगा; तब राजा श्रेणिक ने कहा कि मैं मुनिराज को श्रावक होकर समझाऊँ? हाँ; तुमने नहीं समझाया तो नरक निश्चित है। और अगर सम्बोधन दिया तो वे केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे। बन्धुओं! ये है अनियत पर्याय का उदाहरण। इसी तरह दूसरे उदाहरण भी हैं कि मानो बेटा दौड़ करके जा रहा है रेल की पटरी के पास, अगर सब कुछ नियत है तो आप न रोकते; फिर क्यों रोकती है माँ कि बचाओ-बचाओ, पकड़ो-पकड़ो नहीं तो चला जायेगा, मर जायेगा। क्योंकि कुछ पर्यायें अनियत भी होती हैं। यह आपकी क्रिया से अवश्य मालूम पड़ रहा है। लेकिन कुछ लोग बोलने में तो एकान्त मिथ्यादृष्टि बन गये हैं। सब को नियत बना दिया, सब नियत है तो आप पुरुषार्थ मत करो। पुरुषार्थ का तो निषेध करते हैं फिर भी पुरुषार्थ करते हैं। कोई बच्चा बीमार हो जाता है तो चलो डॉक्टर के पास चलते हैं अगर नियत हो तो पड़ा रहने दो। तो नहीं; पुरुषार्थ करना पड़ेगा, नहीं किया तो प्राण निकल सकते हैं अतः दयावान भागते हैं डॉक्टर के पास। जो धर्मात्मा होते हैं वे इस बात को समझते हैं कि कुछ

पर्यायें अनियत भी होती हैं, यह मानकर पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।

एक व्यक्ति ज्योतिष शास्त्री था। हर एक बात में ज्योतिष देखता था। गाँव वाले भी कहते थे कि कोई भी काम हो बस पंडित को दिखाओ, पंडितजी जो कहेंगे हम वही करेंगे। एक दिन क्या हुआ एक बच्चा नदी में गिर गया जब तक पण्डित ने ज्योतिष देखा कि बचेगा कि नहीं तब तक बच्चा मर गया। देखो इस समय पुरुषार्थ करना जरूरी था फिर ऐसे मौके पर जो नियत को देखता है उसकी नियत ही खराब है समझो। यहाँ तो पुरुषार्थ की मुख्यता है। आचार्य कहते हैं किसी काल में भले कोई कार्य नियत है तो भी आपको उसमें पुरुषार्थ की जरूरत है जो पुरुषार्थ को नकारता है वह निकम्मा है और मिथ्यादृष्टि है। उसे तो अपने पुरुषार्थ में संलग्न रहना चाहिए। हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठता है कि जब जो होना होगा सो हो जायेगा। जिस काल में नहीं; वह नियत होगा तो वैसा हो जायेगा भले; लेकिन मुझे पुरुषार्थ करना है। मैं क्या केवलज्ञानी हूँ? प्रत्यक्ष ज्ञानी हूँ जो मैंने जान लिया कि ये नियत है। अगर नहीं हैं हम ऐसे ज्ञानी तो पहले पुरुषार्थ करें और पुरुषार्थ करने के बाद भी काम न हो तो समझो कि यह नियत है। इस कार्य में दैव कर्म की मुख्यता है। लेकिन दैव की प्रबलता न होने पर हम कभी-कभी कर्मों की उदीरणा को बचा लेते हैं। कभी कर्मों को उदय में लाते हैं कभी संक्रमण भी कर देते हैं। ये अवस्थायें भी होती हैं, नहीं होती तो फिर दस करणों की व्यवस्था क्यों बनाई। दसकरण बताये गये हैं जिनमें निधत्ति, निकाचित करण भी होते हैं जिनमें कर्म सरलता से क्षय को प्राप्त नहीं होते हैं। कुछ कर्मों में तो उत्कर्षण, अपकर्षण अवस्था हो जाती है। क्षय को प्राप्त भी हो जाते हैं। उदीरणा भी होती है- उदीरणा के लिए ''अकाल विपाको उदीरणा'' ऐसा शब्द आता है शास्त्रों में। अकाल में कर्म का फल चखना, चखाना सो उदीरणा है मान लीजिए कि कोई कफ का रोगी है। डॉक्टर ने कह दिया कि उसे दही नहीं खाना है फिर भी वह दही खाये तो ये अकाल में असाता कर्म की उदीरणा करवाना है। सर्दी खांसी का रोग अकाल में आ जायेगा। इसी तरह माना कि किसी को किसी वस्तु से सर्दी हो जाती है या ज्यादा केले खाने से सर्दी हो जाती है उसे मना किया फिर भी केले खा रहा है मानो कि वह असाता कर्म की

उदरणा कर रहा है। फिर उस समय दु:खी होने से तो और कर्म बंधेगा। असाता वेदनीय का क्षय करना है तो धूप में बैठ जाओ, धूप को सहो, गर्मी को सहो और ठंडी सहो। मुनिराज यही तो करते हैं; 32 अन्तरायों का नियम स्वयं ने लिया है। बाल आ गया, कंकड़ आ गया हो समता पूर्वक अन्तराय कर देते हैं; क्योंकि कर्मों को खपाना है जल्दी-जल्दी। उदीरणा करा करके कर्मों को निकाल देते हैं। नहीं तो कब उदय में आयेंगे। ऐसे कर्मों की स्थितियाँ बहुत तरह की है कर्म सिद्धान्त बहुत बड़ा है। आप अनेकान्त धर्मी बनो। 'अनेके अन्त: धर्म: यस्मिन स: अनेकान्त:' अर्थात् जिसमें अनेक गुण धर्म या अवस्थाएँ होती हैं वह अनेकान्त कहलाता है। नियत की भी कुछ पर्यायें हैं। अनियत की भी कुछ पर्यायें हैं। हमें तो पुरुषार्थ की जरूरत है। पुरुषार्थ हमेशा करना है। चाहे वह बाद में नियत भी क्यों न हो।

आपको पुरुषार्थहीन कभी नहीं बनना। नहीं तो आप सम्यग्दृष्टि कभी नहीं कहलायेंगे। हम कैसे जान सकते हैं कि ये पर्याय नियत ही है ? पुरुषार्थ जरूर करना चाहिए। अनेकान्त वास्तविक धर्म है। उसको अपने जीवन में लायें। कई लोग एकान्तवादी बन रहे हैं, मिथ्याभावी बन रहे हैं। जैसे लहर चलती है तो अंग अकड़ जाते हैं कभी लू लग जाती है तो फिर क्या हो जाता? हाथ पैर लड़खड़ाने लग जाते हैं। ऐसे ही ये एकान्त की लहर या लू है इससे बचें।

वहाँ विकृत मुद्रा वाले मुनिराज के निकट ज्यों ही राजा श्रेणिक गये और कहा हे मुनिराज! आप धन्य हो, महान हो, आपने कितना त्याग किया है। घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, शरीर से भी मोह छोड़ दिया, आपने तो सब कुछ छोड़ दिया। परम वीतरागी आपको तो कुछ विकल्प ही नहीं है। अपने परिवार का क्या हो रहा है? कुटुम्ब का क्या हो रहा है? सब अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं। पिता, पत्नि, बेटा ये सब संयोग सम्बन्ध हैं। इनका एक दिन वियोग तो निश्चित ही है, हम किसी का क्या कर सकते हैं? आपका इतना महान पुण्य कर्म था कि आप इस पद पर आये हैं। इस महान पद को तो तीन लोक के जीव भी नमस्कार करते हैं। ऐसा पंच परमेष्ठी पद आपने प्राप्त किया है, हे प्रभु! घर

की चिन्ता क्या; आपको तो अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं है धन्य-धन्य-धन्य और इतना कहते ही तुरन्त मुनिराज के अन्दर चिंतन आने लगा कि अरे! मैं तो मुनि हूँ और मैं क्या चिन्ता कर रहा हूँ अरे! परिवार की चिन्ता; नहीं, नहीं। जहाँ देह अपनी नहीं वहाँ अपना और क्या?

तुरन्त ऐसा चिन्तन कर आत्मा ध्यान में लीन हो गये। जैसा कि समयसार में आचार्य कुन्द कुन्द कहते हैं-

एगो मे सासादो आदा, णाण दसंण लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संयोग लक्खणा॥

इतना विचारते ही उनके अन्दर इतनी एकाग्रता आ गई कि अन्तर्मुहुर्त्त मात्र में उन्हें केवलज्ञान हो गया। वे केवली बन गये, गंधकुटी की रचना हो गई। उन मुनि महाराज का नाम था "धर्मरुचि महाराज"। पढ़ो पुराणों में सब कुछ लिखा है।

अगर राजा श्रेणिक ने प्रश्न न पूछा होता और आ करके समझाया न होता और वे ऐसा सोचते रहते तो नरक आयु का बंध हो जाता। ज्यों ही राजा श्रेणिक ने संबोधा तो वे आत्म चिंतन में लीन हो गये, केवलज्ञानी बन गये। देखो स्तुति के रूप में सम्बोधन दिया। कैसे स्थितिकरण किया जाता है, सम्बोधन किया जाता है? इस बात को आज के लोग समझते नहीं हैं। वाणी में मधुरता होनी चाहिए। हर समय कुछ पुरुषार्थ करें। कोई रोगी हो तो दवा करना कोई डूबता हो तो तुरंत बचायें न कि ज्योतिष देखने जायें। नहीं तो हो जायेगा काम तमाम। नियतवाद के एकान्त को पकड़कर मिथ्यादृष्टि मत बनो। सम्यक्त्व धर्म की रक्षा के लिए हर समय पुरुषार्थी बनकर आत्महित का कार्य करो।

अन्त में लोक प्रचलित चार पंक्तियाँ हैं कि-

चारों ओर कषायों का प्रभाव गहरा है।
सपनों के तट पर यह मानव ठहरा है॥
जीवन के रहस्य को कैसे समझे मानव।
मानव के जीवन पर पुण्य व पाप का पहरा है॥

- महावीर भगवान की जय -

3- निमित्त और उपादान

मङ्गलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानाम्, वंदे तद्गुण लब्धये ।।

सद्धर्मबन्धुओं,

कर्मों के बंधन को तोड़ने के लिए व्रत, नियम के बंधन की आवश्यकता होती है। मैं आपको कोई और बन्धन से क्या बांधू क्योंकि वैसे ही आप पूजा विधान के बन्धन में बंधकर बैठे हैं। मुनिराजों का तो नियम संयम का बन्धन कर्म बन्धन छुड़ाने के लिए है भव-बन्धन बांधने के लिए नहीं। एक तरह से तो जो धर्मात्मा बन्धन बांधते हैं वह व्रतों का बन्धन संसार के बन्धन से दूर होने के लिए बांधना पड़ता है। एक बन्धन तोड़ने के लिए दूसरा बंधन स्वीकार किया जाता है। चातुर्मास का बन्धन भी एक संयम का बन्धन है जो जीव रक्षा के लिए है। इसलिए आपको भी हम धर्म के बन्धन में बांधते हैं। जिस वजह से आप घर के बन्धन से छूटे रहते हैं। जब तक आप यहाँ मोक्षमार्गी के पास हैं तब तक संसार के बन्धन से छूटे रहते हैं। जब यहाँ से बाहर चले जाओगे तो फिर भव बन्धन से बन्धने लग जाओगे। इसलिए कोशिश करता हूँ कि आपका मन यहाँ लगा रहे। ज्यादा से ज्यादा समय धर्म में लगाएँ लेकिन आकुलता नहीं होनी चाहिए। जो स्वेच्छा से बड़ी प्रसन्नता के साथ यहाँ पर समय देते हैं उन्हें तो प्रथम क्वालिटी का पुण्य मिलता है कर्मों की निर्जरा भी होती है और जो लोग आकुलता के साथ समय देते हैं उन लोगों का क्या कहना थोड़ा-बहुत घटिया क्वालिटी का पुण्य मिल जाता है इसलिए हम चाहते हैं कि आपको उत्कृष्ट रूप से बहुत अच्छी क्वालिटी का पुण्य मिले।

आज हमें सहायक तत्त्व के बारे में चिंतन करना है। हम लोगों ने अभी दैव और पुरुषार्थ के बारे में सुना, नियत-अनियत के बारे में सुना। आज सोचता हूं कि कुछ निमित्त और उपादान की चर्चा की जाये। इसके लिए गुरु महाराज के द्वारा लिखी हुई जो मूकमाटी कृति है उसमें उनके आशीर्वाद के रूप में जो शब्द हैं जिनमें उन्होंने अपने गद्य के शब्दों में निमित्त उपादान के विषय में जो लिखा है

उसे आज हम लगभग गुरु महाराज के ही शब्दों में कुछ सुनेंगे। उसके पहले भूमि में कुछ कहता हूँ कि निमित्त और उपादान क्या वस्तु है। साधन के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होगी। मार्ग के बिना मंजिल की प्राप्ति नहीं होगी और कारण के बिना कार्य भी नहीं होता।

इसलिए बन्धुओं निमित्त के बिना उपादान की जागृति कभी नहीं होती; और यहाँ तक कह सकते हैं कि उपादान भी तो एक अन्तरंग निमित्त है। अन्तरंग शक्ति का नाम ही तो उपादान है। ऐसा गुरुओं का कहना है। ऐसे उपादान को जागृत करने के लिए कई बार पुरुषार्थ करते हैं। निमित्तों को जुटाते हैं। निमित्त के माध्यम से हमारा उपादान सशक्त बनता है। कभी तो उपादान बहुत बलवान होता है जिसकी वजह से हमें निमित्त सहज रूप से मिल जाते हैं। सबसे पहले तो हम यह कहना चाहते हैं कि आत्मा जो द्रव्य अपेक्षा से या शुद्ध नय से शुद्ध है वही आत्मा व्यवहार नय से संसार की अपेक्षा अशुद्ध भी है। नय विवक्षा अवश्य लगाना चाहिए। एक समय आत्मा की शुद्ध अवस्था प्रगट हो सकती है जो कि शक्ति रूप से बीज के अन्दर वृक्ष की तरह छुपी हुई है। जैसे घी को प्राप्त करने के लिए दुग्ध को गर्म करके उसे जमा करके और मथ करके उससे नवनीत पाते हैं; फिर उसको गर्म करके घृत की प्राप्ति होती है। उसी तरह इस आत्मा को परमात्मा बनाना है तो जैसे कि उस दूध के लिए हमें कई निमित्तों की आवश्यकता पड़ी अग्नि, खटाई, मथनी और फिर पुनः अग्नि इतने सारे निमित्तों से घृत तैयार हुआ उसी प्रकार अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए निमित्तों की आवश्यकता पड़ती है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं कि-

योग्योपादान योगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादि स्वादि सम्पत्तावात्मनोप्यात्मतामता॥

योग्य उपादान के योग से श्रेष्ठ द्रव्यादिक के मिलने पर एक पाषाण के पास भी स्वर्णपना प्रगट होना माना गया है। इसी तरह से इस आत्मा के अन्दर शुद्धत्व की शक्ति छुपी हुई है। वह कैसे प्रगट होगी उसके लिए श्रेष्ठ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की उपलब्धि होने के बाद वह शक्ति बाहर आयेगी जैसे स्वर्ण

पाषाण से स्वर्ण निकल सकता है। अन्ध पाषाण से स्वर्ण नहीं निकल सकता। स्वर्ण पाषाण से ही स्वर्ण निकल सकता है। एक पाषाण में स्वर्ण होता है लेकिन दिखता नहीं; उसमें कुछ क्रिया करने के बाद स्वर्ण बाहर आता है। योग्यता है उसके पास इसलिए बाहर आता है। जिस अंध पाषाण के पास योग्यता नहीं है उसके भीतर से स्वर्ण बाहर नहीं आता। होता जरूर है उसमें जैसे जो मोर पंख होते हैं उनमें स्वर्ण माना गया है लेकिन वह स्वर्ण बाहर नहीं आता है। ऐसे ही एक अन्ध पाषाण है उसका भी स्वर्ण बाहर नहीं निकलता लेकिन जो स्वर्ण पाषाण है उससे स्वर्ण बाहर जरूर आता है लेकिन योग्य प्रक्रिया करने के उपरान्त। देखो कि जो स्वर्णकार है वह स्वर्ण पाषाण को उसके सुयोग्य क्षेत्र व काल में उसे गर्म करता है इसके बाद कोई वस्तुओं के योग सह जो औजार होते हैं उनका भी उपयोग करता है। अपने हाथों को, मन को, बुद्धि को लगाता है कितनी सारी बातें उस चीज को आवश्यक हो जाती हैं। जब कहीं वह स्वर्ण बाहर आता है। इसी तरह इस आत्मा के अन्दर वह शक्ति विद्यमान है जो सिद्धत्त्व शक्ति रूप से जैसे कि बीज के अन्दर वृक्ष बनने की शक्ति है। बीज शक्ति रखता है, अगर उसे वैसे निमित्त मिलें तो वह फलीभूत हो, खाद्य मिले, पानी मिले, योग्य भूमि मिले, सुरक्षा हो, तो बढ़ता चला जायेगा और एक दिन वृक्ष का रूप ले लेगा। उससे आप फल पायेंगे। वर्तमान में उस शक्ति को हम नहीं देख सकते केवल शक्ति रूप से ही श्रद्धाकर समझ सकते हैं, द्रव्य रूप से जान सकते हैं और वह पर्याय जब प्रगट होगी तभी हम उसे देख सकेंगे। इसी तरह जगत में कई भव्य जीव हैं कई अभव्य भी जीव हैं। भव्यों के अन्दर वह शक्ति विद्यमान है और भी प्रगट हो सकती है लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिलने से। अभव्यों के पास वह शक्ति नहीं है। एक और होता है वह है दूरानुदूर भव्य जिसकी शक्ति प्रगट नहीं हो पाती इसीलिए भव्य तो है लेकिन दूरानुदूर भव्य। विचार तो करो कि भव्य को कुछ ऐसे निमित्त मिलते हैं कि जिससे आत्मा की वह आंतरिक शक्ति प्रगट हो जाती है इसीलिए अपनी आत्मा को शरीर रूपी द्रव्य वज्रवृषभनाराचसंहनन चाहिए। ऐसे उत्कृष्ट संहनन रूप द्रव्य के साथ फिर क्षेत्र में कर्मभूमि चाहिए और काल में चौथा काल हो और भाव में महाव्रत

होना चाहिए। क्योंकि मुनि बने बिना कभी कर्मों का क्षय नहीं हो सकता है। परिग्रह का सम्पूर्ण रूप से त्याग किये बिना ध्यान नहीं हो सकता और उत्तम ध्यान के बिना सम्पूर्ण कर्म नहीं कट सकते। तो यह सब निमित्त हैं। इन निमित्तों के मिलने पर ही हमारी आत्मा परमात्मा बनती है।

हम वर्तमान में ही वह कल्पना करने लग जाये कि मैं तो शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निरंजन हूँ तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि वह पर्याय अभी प्रगट नहीं हुई है। अभी अशुद्ध पर्याय है। वर्तमान में सिद्धों सम में शुद्ध पर्याय का अनुभव नहीं हो सकता। तो यह बात हमेशा याद रखना है कि बिना निमित्त के कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। कभी तो प्रेरक निमित्त मिलते हैं, कभी उदासीन निमित्त मिलते हैं, निमित्त होते अवश्य हैं। उपादान के साथ निमित्त की बड़ी आवश्यकता है तो निमित्त क्या है? आप बोलें कि महाराज आये; महाराज ने पूजा का उपदेश दिया, पंडितजी ने विधान करवाया तब इतने लोग यहाँ पर आये बहुत लोग तो ऐसे हैं जिनके गृह से यहाँ कोई न कोई सदस्य इस पूजा में शामिल अवश्य है। कुछ लोग ऐसे भी होंगे जिनकी कोई न कोई समस्या होगी। अथवा उस प्रकार की भक्ति भावना नहीं बनी होगी। अथवा महाराज हैं, पंडितजी हैं तब भी उनकी भावना में, उपादान में, इतना पुण्य नहीं होगा, तो वे प्रवचन तो सुनते हैं या किसी न किसी धार्मिक कार्य में संलग्न अवश्य हैं, उपादान रहे तो महाराज का उपदेश कार्य कर जाता है। उपादान में ही शक्ति नहीं हो तो फिर कई प्रकार की समस्यायें रहती हैं इसलिए कभी किसी को बाध्य भी नहीं किया जा सकता। प्रेरणा दे सकते हैं। क्योंकि बाध्य करने के बाद भी काम नहीं हो पायेगा तो फिर क्या कहेंगे? तो फिर वहाँ कर्म बलवान व दैव की मुख्यता है न, दैव मतलब कर्म; जो मुख्य है। अभी तो आप सीख गये न जान लिया आपने। बहुत पुरुषार्थ करने के बाद भी काम नहीं हो पाये तो पुरुषार्थ को छोड़ना नहीं, अन्तिम समय तक पुरुषार्थ करते रहना। दैव मुख्य है ऐसा नहीं; पुरुषार्थ करते रहने से अनियत में दैव गौण हो जाता है और शेष कार्य पूर्ण हो जाते हैं। इसलिए तो पुरुषार्थ हमेशा जारी रखना चाहिए। तो हम ये समझ रहे हैं कि एक वस्तु में जो शक्ति होती है उसका उद्घाटन कभी ऐसे निमित्तों को मिलने से होता है। कभी भी निमित्त

इतना अच्छा मिले कि उपादान की शक्ति थोड़ी कमजोर पड़ रही हो तो उसे भी वह बलवान बना दे। तो हम लोग सुन रहे थे कि हमें ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मिल जाये कि हमारी आत्मा मुक्त हो जाये इसलिए जो हमने अभी पूज्यपाद आचार्य का श्लोक पढ़ा इसी इष्टोपदेश के मंगलाचरण में उन्होंने कहा है कि-

यस्य स्वयं स्वाभावाप्ति-रभावे कृत्स्न कर्मणः।
तस्मै संज्ञान रूपाय, नमोस्तु परमात्मने॥

यहाँ उपादान और निमित्त की अच्छी बात कही है इसे आप सुन लीजिए। 'यस्य स्वयं स्वभावाप्ति रभावे कृत्स्न कर्मण:' सम्पूर्ण कर्मों के नाश होने के बाद यस्य स्वयं स्वभावाप्ति अर्थात् जिस आत्मा ने स्वयं अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपनी आत्मा की प्राप्ति कर ली है, इससे क्या सिद्ध हो रहा है? आपको कितना समझ में आ रहा है? यह हम जानना चाहते हैं, जिसने स्वभाव की प्राप्ति की, अभावे कृत्स्न कर्मणा:- कर्मों के अभाव होने के बाद और कृत्स्न शब्द आया है अर्थात सम्पूर्ण कर्मों का अभाव; पूरे के पूरे कर्मों के नाश होने के बाद, अष्ट कर्मों के नाश होने के बाद, अपने स्वभाव की प्राप्ति कर ली है। कर्मों का पूर्ण रूप से अभाव आपके हुआ है क्या? यह आचार्यों की वाणी है कि सम्पूर्ण कर्मों के नाश होने के बाद ही स्वभाव की प्राप्ति होगी फिर आप कैसे कह सकते हैं कि मैं पूर्ण रूप से शुद्ध हूँ बुद्ध हूँ, निरंजन हूँ और सिद्ध परमेष्ठी के समान हूँ। अगर कहें तो गलत है, क्योंकि वहाँ कहा जा रहा है कि सम्पूर्ण कर्मों के अभाव होने के बाद ही स्वभाव की प्राप्ति होती है तभी शुद्धात्मा का अनुभव होता है। अपने सच्चे स्वभाव की प्राप्ति कर्मों के अभाव के बिना नहीं होगी और कर्मों का अभाव ध्यान करने के बिना नहीं होगा और ध्यान सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके मुनि बने बिना नहीं होगा। किसी को हुआ है क्या? क्या मुनि बने बिना बड़े-बड़े तीर्थंकर भी केवलज्ञानी हो गये? उनको बिना मुनि बने केवलज्ञान हो जाता होता तो वे घर परिवार क्यों छोड़ते, वहीं गृह से मोक्ष हो जाता और तिल तुषमात्र परिग्रह भी नहीं छोड़ना पड़ता। तिल तुषमात्र परिग्रह भी रहे तो मोक्ष नहीं होता क्योंकि वह परिग्रह ध्यान में बाधक कहा जाता है। उसके लिए

साधक निमित्तों की भी आवश्यकता है। जिसके अभाव से पंचमकाल में आपको मोक्ष नहीं हो रहा है। आप भव्य हैं और आपने अणुव्रत भी ले लिये क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र किसके पास आते हैं? तो भव्य के पास ही आते हैं। अभव्य के पास नहीं आते हैं। भव्य को अभी मोक्ष नहीं हो रहा क्योंकि योग्य निमित्तों का अभाव है। उपादान में भी शक्ति कम है उपादान भी उतना दृढ़ नहीं है। अब आप दृढ़ बना लो। ऐसा इस जन्म में आप पुण्य कमाओ अथवा कर्मों का क्षय करो कि कर्मों का क्षयोपशम हो जाये इसके माध्यम से हमको ऐसा स्थान मिले जहाँ चतुर्थ काल हो और उत्कृष्ट संहनन आदि सारी चीजें मिलें। अभी तो सम्यग्दर्शन अपना लिया है, ध्यान रखें मनुष्य से मनुष्य मिथ्या दृष्टि बनता है सम्यग्दृष्टि तो ऊपर जाता है अथवा पूर्व बद्धायुष्क हो तो चतुर्गतियों में जा सकता है। लेकिन नरक जाय तो पहली पृथ्वी से नीचे नहीं, मनुष्य व तिर्यंच हो तो भोग भूमि का और देवों में जाये तो वैमानिक (स्वर्गों) का; इससे अन्य नहीं। 160 विदेहों में भोग भूमि नहीं। कोई कहे कि पंचमकाल का कोई व्यक्ति सम्यक्त्व के साथ विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर तीर्थंकर बन सकता है क्या? तो आगम कहता है कि यह कहना मिथ्या है क्योंकि कर्मभूमि सम्बन्धी मनुष्य से मनुष्य मिथ्यात्व के साथ बनते हैं और तीर्थंकर तो पूर्व जन्म से ही सम्यक्त्व व अवधिज्ञान को लेकर आते हैं अत: वे स्वर्ग या अधोलोक की तीसरी पृथ्वी तक से आकर जन्म लेते हैं अन्य से नहीं। जब हमारे लिए ऐसा सुद्रव्यादि का योग मिलेगा तभी सर्व कर्मों का क्षय कर सकेंगे। हमें उन निमित्तों का अभाव है। कर्मभूमि तो मिल गई। वज्रवृषभनाराच संहनन आदि उत्कृष्ट संहनन नहीं मिले इसलिए निमित्तों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे केवली जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करने के बाद स्वभाव की प्राप्ति कर ली है उन तस्मै संज्ञान-उन सम्यग्ज्ञान रूप परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं। तो ध्यान रखना तो पुरुषार्थ के माध्यम से ही सिद्धि होती है उसके बिना नहीं होती। इसी के बीच में ये भूमिका बनाने के बाद हम आचार्य के चिन्तन को थोड़ा समझें। गुरु महाराज कहते हैं कि किसी भी कार्य का कर्ता कौन है और करण कौन है। इस विषय का जब तक भेद नहीं खुलता तब तक ही यह संसारी

जीव मोही अपने से भिन्न अनुकूल पदार्थों के सम्पादन संरक्षण में और प्रतिकूलताओं के परिहार में दिन-रात तत्पर रहता है। कोई भी कार्य होता है तो उसमें कार्य करने वाला कौन है और कार्य किन-किन कारणों से होता है, किन निमित्तों से होता है, कार्य कहो या निमित्त कहो ये सब एकार्थ वाचक हैं। जब तक कारण का भेद खुलता नहीं तब तक ये संसारी प्राणी संसार में ही उलझा रहता है। चेतन सम्बन्धी कार्य हो या अचेतन सम्बन्धी; बिना किसी कारण ही उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं। बहुत सरल शब्दों में कहा है। और ये भी अकाट्य नियम है। कार्य वैसा होता है जैसा कारण मिले अर्थात् कारण जैसा होता है वैसा कार्य होता है। जैसे बीज बोते हैं वैसे फल प्राप्त होते हैं, विपरीत नहीं। आपने बोया तो है आम, फल पाओ जाम- जामफल (अमरूद) मिले; अरे! आम की जगह जाम मिले तो ऐसा कैसा हो सकता है। नहीं हो सकता। जैसा कारण है वैसा कार्य। आम बोया तो आम ही पाओगे। वैसे कारण दो हैं- देखो एक उपादान और एक निमित्त, गुरु महाराज कहते हैं कि उपादान को अंतरंग कारण और निमित्त को बाह्य कारण कह सकते हैं। उपादान कारण वह है जो कार्य के रूप में ढल जाता है और उसके ढलने में जो सहयोगी होता है वह है निमित्त। जैसे- उपादान मिट्‌टी है, मिट्टी के अन्दर घड़े बनने की जो शक्ति है वह उपादान कारण है। वो शक्ति स्वयं घड़े रूप में परिवर्तित होगी। जैसे माटी का लौंदा कुम्भकार के संयोग से घट में बदलता है। उसका निमित्त क्या है- कुम्भकार। बोलते हैं- उपरिम उदाहरण सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर इसमें केवल उपादान की ही नहीं अपितु निमित्त की भी अपनी मौलिकतायें सामने आती हैं। मात्र मिट्टी अपने आप घड़ा बन जाएगी तो ऐसा नहीं यहाँ पर निमित्त कारण के रूप कुम्भकार के सिवा और भी कई निमित्त हैं जैसे आलोक (सूर्यप्रकाश)। अंधेरे में काम हो जायेगा तो नहीं। प्रकाश तो चाहिए और चक्र जिस पर घुमाया जाता है लौंदा उसे एक लकड़ी का दण्डा चाहिए। ऐसे बहुत सारे निमित्त आवश्यक होते हैं तभी मिट्‌टी से घड़ा बनता है। इन निमित्त कारणों में कुछ हैं उदासीन व कुछ प्रेरक। चाक जिस पर घूमता है ऐसी कील उदासीन है। कुम्भकार स्वयं तो प्रेरक निमित्त है। ऐसी स्थिति में अनास्था रखने वालों से मानो मेरे आचार्यश्री

कह रहे हैं कि बतायें मूल में ही भूल हो रही है उसे सुधारने हेतु मैं प्रश्न कर रहा हूँ उत्तर आप देते चले जाना है, क्या आलोक के अभाव में कुम्भकार कुम्भ का निरवहन कर सकता है? क्या चक्र के बिना माटी का लौंदा कुम्भ के रूप में ढल सकता है? क्या बिना दण्ड के चक्र का भ्रमण सम्भव है? क्या कील का आधार लिए बिना चक्र का भ्रमण सम्भव है? क्या, सबके आधारभूत धरती के अभाव में वह सब कुछ घट सकता है? कुम्भकार का उपयोग कुम्भकार हुये बिना करों में कुम्भ का आकार आ सकता है? समझो इस बात को, क्या बिना इच्छा के ही कुम्भकार कुम्भाकार दे सकता है? तो नहीं, पहले बुद्धि में आकर आता है बाद में करों में आता है। क्या बिना इच्छा भी कुम्भकार अपने उपयोग को कुम्भाकार दे सकता? नहीं दे सकता। क्या कुम्भ बनाने की इच्छा निरपेक्ष, निरुद्देश्य होती है, नहीं। और साथ में ये भी समझो कि क्या कील और आलोक के समान कुम्भकार भी उदासीन है? नहीं। कुम्भकार तो प्रेरक निमित्त है और ये आलोक कहो या कील कहो ये उदासीन निमित्त हैं तो इन सब चीजों को समझें। कितने भी प्रश्न किये हों तो इन सब प्रश्नों का समाधान 'नहीं' शब्द के बिना कुछ भी नहीं है। हम हमेशा इस प्रकार चिन्तन करें कि निमित्त और उपादान ऐसी दो शक्तियाँ हैं जो वस्तु के निर्माण में अथवा वस्तु की जो कोई अवस्था प्राप्त होती है उसमें ये निमित्त होती हैं अगर एक भी शक्ति का अभाव हो तो आंतरिक शक्ति प्रगट नहीं होती। ये सब उसमें सहयोगी हैं। इसलिए मैंने कहा था- कारण के बिना कार्य की प्राप्ति नहीं होती, साधन के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होती और मार्ग के बिना मंजिल भी नहीं मिलती।

निमित्त के बारे में बहुत कुछ कह सकते हैं। मुक्ति और मोक्ष में क्या अन्तर है?

तुम्बड़ी मिट्टी से लिपटी होने पर पानी में डूब जाती है। ज्यों ही मिट्टी गल जाती है तो तुम्बड़ी ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार वैसे ही यह आत्मा बन्धन के छेद होने पर मुक्त हो जाती है इसी अवस्था का नाम मोक्ष है। मोक्ष यहीं पर है। कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है, मोक्ष के बाद आत्मा ऊपर जाती है। जैसे अग्नि शिखा कहाँ जाती है? तो ऊपर की ओर। बस वैसे ही मुक्त आत्मा।

वैसे तो एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। कुछ कर ही नहीं सकता। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व वाला द्रव्य है। आप सहयोगी निमित्त कुछ नहीं मानते। फिर कैसे घटेगा? निमित्त वस्तु नहीं है तो फिर आप सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि है बताओ? वो आत्मा जा रही है, जाते-जाते 14 राजू ऊपर पहुँच गई वह आत्मा। इसके ऊपर क्यो नहीं गई? सिद्ध शिला से तो ऊपर गई है यह ठीक है लेकिन और ऊपर जाना चाहिए, कौन बाधक बन गया? किसका सहारा छूट गया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता ऐसा बोलते हैं लोग। उनका द्रव्य अलग है, धर्मास्तिकाय अलग है। सिद्धों को तो ऊपर ही जाते रहना चाहिए फिर कौन रोक रहा है, किसने सहारा नहीं दिया। किसके सहारे की आवश्यकता पड़ गई। अनंत शक्ति से सम्पन्न हैं वे फिर भी ऊपर नहीं जा पा रहे हैं। धर्मास्तिकाय द्रव्य का अभाव है फिर भी उनके पास तो अनंत शक्ति है। दूसरा द्रव्य क्या कर सकता है? इसका मतलब है कि वह उदासीन द्रव्य उन्हें भी चाहिए। धर्मास्तिकाय द्रव्य के बिना ऊपर नहीं जा सकते। धर्मास्तिकाय चलाता नहीं, धक्का नहीं देता। रेल स्वयं चलती है पटरी तो चाहिए। मछली स्वयं तैरती है जल तो चाहिए। ऐसे ही धर्मास्तिकाय द्रव्य के हुए बिना सिद्ध परमेष्ठी अनंत शक्ति से सम्पन्न भी लोकाकाश के ऊपर नहीं जा पाये। इसका मतलब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का सहयोगी बनता है। और जो नहीं मानता ऐसा; वह सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि? वह पक्का मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ध्यान रखो: निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होता है, साध्य रूप कार्य में हेतु प्रत्यय या निमित्त को मानना पड़ेगा। ये बात तो कुन्द-कुन्द ने भी मानी है। तुम कहाँ से आये कुन्दकुन्द के साथ छल करते हो? धोखा करते हो उन्होंने तो कहा **'चुक्केज्जछलं न घेत्तव्वं'** मैं चूक जाँऊ तो तुम छल को ग्रहण मत करना ऐसा साफ-साफ कहा है लेकिन वे तो नहीं चूके हम ही चूक रहे हैं जैसा कि पञ्चास्तिकाय परमागम ग्रन्थ में कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा है कि-

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेतु भणिदा, दंसण मोहस्स खय पहुदि॥

क्या बोलते हैं देखो; निमित्त की चर्चा वे ही कर रहे हैं सम्यग्दर्शन के लिए

निमित्त भूत बहिरंग और अन्तरंग निमित्त क्या हैं? सम्यग्दर्शन के लिए जिनेन्द्र भगवान, शास्त्र और उसको जानने वाले गुरु ये बहिरंग निमित्त हैं और अन्तरंग निमित्त दर्शन मोहनीय का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना ये सम्यग्दर्शन के लिए अन्तरंग निमित्त हैं। जिसे कभी-कभी उपादान शक्ति कह दिया जाता है। अगर वह प्रबल होता है तो देव, शास्त्र, गुरु मिल जाते हैं। कई बार सहज ही मूर्ति के दर्शन। अचानक गुरु का आगमन हो जाये या भाग्य से कोई शास्त्र दे दे और कई बार उपादान कमजोर हो तो कई निमित्त जुटाने पड़ते हैं जैसे दूर दर्शन करने जाना पड़ता है गुरु को बुलाना पड़ता है और शास्त्रजी को कहीं से लेकर आना पड़ता है।

कभी-कभी बहिरंग निमित्त के माध्यम से अन्तरंग निमित्त भी बहुत बलवान बनता है। आप अपने निमित्त को बलवान बना रहे हैं पंचमकाल में आपको सब कुछ नहीं मिला श्रेष्ठ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। तो भी आप ऐसे ही संसार में बैठे रहें फिर सब कुछ मिल जायेगा क्या? आप पूजा करके, दान करें अगले भव में जाकर देव बनेंगे। चतुर्थकाल में सम्यग्दृष्टि रूप से जन्मेंगे। चौथे काल में उत्कृष्ठ संहनन पाकर के कर्मों का नाश करके मोक्ष चले जायेंगे। आप निमित्त को प्राप्त करें। उपादान को बलवान बनायें। जैसे कहा ही है कि-

तपा हो जो आग में, वही स्वर्ण चोखा है।
वक्त जो पहिचाने, वही नर अनोखा॥
समय रहते कुछ, करलो हे मानव।
वरना हर साँसों में धोखा है॥
- महावीर भगवान की जय -

4- अनेकान्त को पहचानो

मङ्गलाचरण

धम्मोमंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवावितस्स पणमंति जस्सधम्मे सया मणो ॥

सद्धर्म बन्धुओं,

अभी यहाँ पर जो एक शिक्षाप्रद धार्मिक वातावरण निमित्त किया गया है उससे अपने लिए बड़ी प्रेरणा मिलती है कि-

''अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, धर्म क्षेत्रे विनश्यति,
धर्म क्षेत्रे कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति॥''

अन्य क्षेत्रों में किया गया पाप धर्म क्षेत्र में आकर के नाश को प्राप्त होता है और धर्म क्षेत्र में किया गया पाप, उस पाप को धोने का कौन-सा स्थान है? धर्म ही एक पवित्र स्थान था उसी जगह हमने पाप कर लिया तो उस धर्म क्षेत्र को ही गंदा कर दिया समझो, जिस गंगा में नहाने गये थे वह गंगा ही मैली हो गई तो हमारा मैल कौन धोयेगा? ध्यान रखो ''धर्म क्षेत्रे कृतं पापं व्रज लेपो भविष्यति' अर्थात् धर्म क्षेत्र में किया गया पाप व्रज लेप के समान हो जाता है। जैसे वज्र लेप हो जाय तो बहुत काल तक छूटना मुश्किल है इसी तरह कर्म का उदय बड़ा कटुक फल देता है जैसे कि श्रीपाल को देखो कि कितनी पीड़ा कितनी वेदना होती थी और असहनीय वेदना के कारण जीवन कितना कष्टमय था। दूसरा उदाहरण शमश्रुनीत का था जिसका सारा घर बर्बाद हो गया था और बच्चे भी इधर-उधर भटक रहे थे। कहीं कुष्टरोग से इतनी पीड़ा, तो कहीं खाना मुश्किल और कहीं मांगना। ऐसी मुश्किलों से गुजरने वालों के उदाहरण हमने सुनाये थे और एक था अकृत पुण्य का उदाहरण जिस अकृतपुण्य के जन्म होते ही सारा घर बर्बाद हो गया। पिताजी का मरण हो गया और जहाँ जाता वहाँ पर ही कष्ट मिलता और जो कुछ हाथ में आता वह सभी चला जाता स्वर्ण की मोहरें भी अग्नि का अंगार बन गयी, तो अपने जीवन सबक लेना चाहिए। मान बढ़ाई के लिए ख्याति पूजा के लिए लोग दान में नाम लिखवा लेते हैं। बोलियाँ ले लेते हैं,

फिर पचास चक्कर लगवाते हैं अपने घर के; फिर उतना ही उन बोलियों का पैसा जो उन्होंने बोलियाँ बोली हैं उनका ब्याज स्वयं भोग लेते हैं। आप विचार करो कि कैसी नियत है लोगों की कि इतना पैसा किसी अन्य को दिया जाये तो उतना ही ब्याज आ जायेगा कुछ बीते दिनों में जितने दिनों में वे पैसा देते हैं उतने दिनों में स्वयं ने उसका ब्याज भोग लिया। अब क्या रहा एक (परसेन्ट)% भी पुण्य नहीं मिलेगा और दुर्गति मिलेगी इसलिए कभी भी किसी तरह से हमें ऐसे कार्य नहीं करना चाहिए। धर्म का पैसा अगर अन्याय पूर्वक संसार में भोगा जाता है तो वह निर्माल्य कहा जाता है। अन्याय से उपार्जित जो धन है वह भी ज्यादा दिन तक नहीं टिकता सकता। एक अच्छा नीति श्लोक है-

अन्यायोपार्जितं वित्तं, दस वर्षे हि तिष्ठति।
प्राप्तेत्वैकादशे वर्षे, समूलं तद्विनश्यति॥

बोलते हैं कि अन्याय से उपार्जित जो धन है वह ज्यादा से ज्यादा दस वर्ष तक अपने पास रह सकता है, ज्यादा से ज्यादा रहे तो बेईमानी का पैसा कहो या अन्याय का पैसा कहो वह दस वर्ष से ऊपर नहीं ठहरता। अगर दस वर्ष से ऊपर ग्यारहवें वर्ष तक रहा तो वह मूल धन को ही नाश कर देता है। ऐसा पैसा अपना मूल ही लेकर चला जाता है मतलब सभी बर्बाद कर देता है। जिस जीवन से पैसा आपने कमाया वह जीवन ही चला जाता है। मुझे एक उदाहरण याद आ गया यह देखकर स्थिति; वही आपको बात कह दें; फिर कि जो कल विषय था उसका समापन भी अथवा यूँ कहो उपसंहार। संक्षेप में उपसंहार करते हुए कल निमित्त के बारे में जो चर्चा की थी, उसमें हम देखते हैं कि लोग विपरीत मार्ग में जा रहे हैं भले ही वह पूछे या न पूछे लेकिन उसका अन्तस बोलता है उनके अन्दर भव्यत्व भी हो सकता है इसी कारण समझो उनका कुछ पुण्य भी हमसे बुलवाता है। उस विपरीत सोच वाली आत्मा की चपेट में कितनी आत्मायें आ रही हैं नहीं मालूम? कब तक भटकते रहेंगे ये जीव? विपरीत मार्ग पर चलते हुए जीवों को देखकर बड़ी करुणा भी आती है कि इन्हें सन्मार्ग अवश्य मिले।

बोलते हैं कि धार्मिक क्रियाओं या रत्नत्रयात्मक धर्म के लोप होने पर और सच्चे आगम सम्मत सिद्धान्त का विप्लव होने पर पूछो अथवा न पूछो, पर जहाँ

पर अर्थ का अनर्थ देखा जा रहा है कि सच्चे सिद्धान्त को उड़ाया जा रहा है, या दबाया जा रहा है उस स्थान पर बिना पूछे भी उस सच्चे स्वरूप का; मतलब आगम के सच्चे स्वरूप का कथन करने के लिए अवश्य बोलना चाहिए जैसे कि ज्ञानार्णव शास्त्र में कहा है-

धर्म नाशे क्रियाध्वंसे, सुसिद्धांत विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं, तत्स्वरूपं प्रकाशने॥

यहाँ पर हम जो बात कहने जा रहे हैं वह अनेकान्त से सम्बन्धित है। क्योंकि लोगों की शंकाये नहीं निकली तो अर्थ का अनर्थ लोग ले लेते हैं। ऐसा सुनने में भी आया कि ऐसा भी कह दिया कि वस्तु में तो कुछ है ही नहीं वस्तु तो परम शुद्ध है। और बाकी सब बाहर की चीजें हैं लेकिन हम कहना चाहते हैं कि आप जिन-धर्म को मानते हैं कि नहीं? पहले तो यह बात बताओ! जिन धर्म तो अनेकान्तमय है कैसा अनेकान्तमय धर्म है, अनेकान्त की परिभाषा क्या होती है? यह पूछो तो-

'अनेके अन्तः धर्मः यस्मिन सः अनेकान्तः'

जिसमें अनेक अन्त अर्थात् धर्म पाये जाते हैं उसका नाम अनेकान्त है अनेक धर्म युक्त वस्तु जो है अनन्त धर्मात्मक है। धर्म का अर्थ क्या है? गुण है। अनन्त धर्म या गुण जिसमें पाये जाते हैं उस वस्तु के पास कुछ नहीं है ऐसा नहीं है; वस्तु जब अनन्त धर्मात्मक है और आप जितना भी कुछ देख रहे हैं अभी तो यहाँ पुद्गल द्रव्य ही देखने में आ रहा है अनुभव में आप ज्ञान, दर्शन गुण के धारी हैं उसका अनुभव आपको होता होगा वह जीव द्रव्य है बाकी द्रव्य तो दिखते नहीं हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल हमें दिखते नहीं हैं जीव दिखता नहीं है अनुभव में आता है। पुद्गल दिखता है हमें उस पुद्गल की अनेक पर्यायें दिखती हैं और जीव उसकी चपेट में है, अनादिकाल से कर्मों के आधीन है यह आत्मा, इसलिए इसकी भी तरह-तरह की अवस्थायें होती रहती हैं जो हमें जानना आवश्यक है कि ये अवस्थायें किस वजह से हो रही हैं द्रव्य में भी बहुत शक्तियाँ हैं और वे शक्तियाँ अपना-अपना काम करती रहती हैं। हम पहले उस निमित्त के बारे में क्या कहना चाहते हैं जो मेरा चिन्तन था, कल मैंने कहा था कि

एक चिन्तन जो लेखनी से लिखा गया वह यह कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव दिखाता है। अगर ऐसा न होता तो आप संसार में क्यों होते आप मोक्ष प्राप्त करके सिद्धालय में होते। आप सिद्धालय में क्यों नहीं हैं? इसका कारण क्या है? हमारे साथ लगा हुआ अनादिकाल से कार्मण शरीर, अष्टकर्मों का समुदाय। "अनादि सम्बन्धे च"। वे कर्म क्या हैं चेतन हैं कि जड़ हैं कि क्या हैं? आप चिन्तन करो, सुन रहे हैं कि नहीं? क्या है? कर्म जड़ है। अचेतन है, चेतन नहीं है और हमारा स्वभाव तो हमारा चेतन गुण रूप है वे मुख्य गुण ज्ञान, दर्शन दो हैं, शरीर व कर्म अचेतन और क्या है पुद्गल रूप है। पुद्गल और आत्मा का कैसा सम्बन्ध है? एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है। अनादिकाल से कर्म हमारे साथ हैं, क्या कर्म हमारे बन गये? हमारे हो गये? और आत्मा कर्ममय हो गई? या कर्म आत्मामय हो गये? नहीं; दूध पानी के समान मिले हैं। इतना समझ सकते हैं उनमें संश्लेष सम्बन्ध है। जैसे दूध का स्वभाव अलग है, पानी का स्वभाव अलग है वैसे ही आत्मा और कर्म है। फिर भी उसका प्रभाव पड़ा है। कर्म से प्रभावित होकर आत्मा चतुर्गति में भ्रमण कर रही है। उसकी विभाव अवस्था हम देख रहे हैं। तो एक पुद्गल ने आत्मा पर अपना प्रभाव डाला या नहीं डाला? यह बताओ मुझे! नहीं डाला होता तो फिर आपको सिद्धों के समान अनुभव होना चाहिए। कोई बताये मुझे कि सिद्धों के समान अनुभव हो रहा है क्या? आपको इस सांसारिक सुखों, दुःखों आदि का अनुभव नहीं हो रहा है क्या? ऐसा कोई है कि जिसको संसार में सुख दुःख का अनुभव नहीं हो रहा हो। सुख-दुःख होते हैं इसका मतलब यह है कि आत्मा कर्मों से प्रभावित हुई है। कर्मों ने अपना प्रभाव आत्मा पर डाला है यह मानना पड़ेगा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कुछ न कुछ कार्य हेतु निमित्त बन जाता है। इसलिए आपको निमित्त का उपकार मानना पड़ेगा। अनेकान्तमय शास्त्र से जो कोई अनभिज्ञ लोग हैं वे लोग कर्म सिद्धान्त को नहीं जानने से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहायक बनना अथवा माता-पिता अपने बच्चों को जो संस्कार देते हैं उसको बोलते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता तो उनका ऐसा कहना बिलकुल ठीक नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो सकता यह बात ठीक है लेकिन

कारण के बगैर कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। साधना के बिना साध्य की उत्पत्ति नहीं होती; यह सिद्धान्त का अटल नियम है। इसलिए एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता, सहायक बनता है यही निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध कहा जाता है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर प्रभाव नहीं डालता तो या अभी किसी द्रव्य की वजह से हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं हो रहा होता तो हम सिद्धालय में बैठे होते; संसार में यहाँ नहीं होते। कर्म ने हमारे ऊपर प्रभाव डाला है और कर्म के माध्यम से चतुर्गति भ्रमण चल रहा है और चलता रहेगा; जब तक कि कर्म नाश नहीं हो जाते। आप यह बात समझ लेते तो आत्म स्वभाव से भिन्न पर द्रव्य रूप उन जड़ अचेतन अष्टकर्मों को नष्ट करने का पुरुषार्थ जरूर करते जो इस संसार में रोके रहने के कारण या निमित्त हैं। आप देखिये निमित्त का प्रभाव कि मयूर की आवाज सुनते ही चंदन के वृक्ष पर लिपटे हुए काले सर्प अपने बन्धन छोड़ करके, अपने बिलों में प्रवेश क्यों कर जाते हैं। जबकि मयूर अलग है, और मयूर के शब्द भी अलग; और वह दूरस्थ चंदन का वृक्ष कहाँ जिस पर सर्प लिपटे हुए हैं; और सुदूर से ही मयूर की आवाज ने उन पर प्रभाव डाला है। इसी तरह आप देखते ही हैं अग्नि के संयोग होने से जल उष्ण क्यों हो जाता है? देखिये अग्नि ने जल पर अपना प्रभाव डाला न; अर्थात् एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य को प्रभावित किया। जल उष्ण हो गया भले ही उष्णता उसकी विभाव अवस्था है लेकिन प्रभावित हुआ वह जल। सूर्य के उदय होते ही कमल बन क्यों खिल जाता है? जब तक सूर्य का उदय नहीं है कमल खिलते नहीं हैं। सूर्य उदय होते ही कमल खिलते हैं इसका मतलब क्या है कि पर द्रव्य का प्रभाव कमलों पर भी पड़ गया, पड़ा कि नहीं? समझ में आया; कि निमित्त कितना प्रभाव डालता है और चन्द्रमा के खिलने पर समुद्र का जल क्यों उछलने लग जाता है। पूर्णिमा के दिन; आप बोलते हैं ना कि ज्वार भाटा आता है। तो जल क्यों उछलता है? यह भी तो दूसरे द्रव्य का प्रभाव है ना! समय पर या मन के अनुरूप भोजन के उपलब्ध न होने पर सरागी लोगों को विशेष आकुलता होती है। अभी पूजा, विधान में अगर 2 बजे तक भोजन ना मिले तो आकुलता होती है यह आकुलता कैसे हुई? पर द्रव्य के

निमित्त से हुई ना! किसी परिवार में किसी व्यक्ति की आयु समाप्त होने पर सरागियों की आँखों में आँसू क्यों देखे जाते हैं? बोलिये ना! किसी की मृत्यु हो जाये तो संसारी लोग रोते हैं; क्यों रोते हैं? उनका मोह का सम्बन्ध है, मोह जुड़ा हुआ है अत: असाता वेदनीय की उदीरणा होने लगी है। अत: इस तरह एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव डाल रहे हैं। किसी के लिए अनिष्ट वचन कहे जाने पर सरागियों के लिए प्रसन्नता भी क्यों होती है? यहाँ भी एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डाला ना? हाँ! ओजस्वी निर्दोषी वक्ता का प्रभाव श्रेष्ठ व बहुत ही प्रभावना करने वाला हो जाता है, सबके लिए आनन्ददायक होता है और ओजस्वी हीन सदोषी वक्ता का प्रभाव लोगों पर अधिक क्यों नहीं देखा जाता यह भी पर द्रव्य का प्रभाव समझना चाहिए। अत: पर द्रव्य कुछ नहीं करता तो ऐसा क्यों कहते हैं कि अनायतनों के दर्शन नहीं करना चाहिए। अनायतन अर्थात् कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र के दर्शन नहीं करना चाहिए क्योंकि मिथ्यात्व आ जायेगा। जब तक एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कुछ नहीं कर सकता तो रोकने की क्या आवश्यकता है? आप बताईये। इसका मतलब है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता है इस बात को नकारा नहीं जा सकता। अगर पर द्रव्य के प्रभाव रूप निमित्त को नहीं मानते तो पर द्रव्य रूप भगवान व गुरु के पास क्यों जाते हैं? जब तक एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कुछ नहीं करता तो अकेले ही रहो किसी के पास मत जाओ। अन्य द्रव्य कुछ करता है इसलिए तो जाते हो। अन्यथा भगवान के दर्शन व णमोकार मंत्र के जाप इत्यादिक धार्मिक नियमों क्रियाओं से बहुत कर्मों का क्षय होता है ऐसा सिद्धान्त रूप जिनागम में क्यों कहा गया है कि:–

''जिन बिम्ब दंसणेण णिधत्ति णिकाचिदस्स कम्मकलावस्स खय दंसणादो''।

ऐसा धवला पुस्तक में कहा गया है कि जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से निधत्ति, निकाचित जैसे कर्म कलापों का क्षय देखा जाता है। ऐसा क्यों कहा गया है? इसका मतलब यह है पर द्रव्य एक दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता है। इसलिए निमित्त को नकारा नहीं जा सकता। यह बात याद रखो इसलिए अनेकान्त दृष्टि

को हमारे जीवन में लाना है और वस्तु अनेक धर्मात्मक है यह भी विचार करना है। कल नियमसार की गाथा कही थी कि सम्यग्दर्शन के लिए निमित्त क्या है-

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेदु भणिदा दंसण मोहस्स खय पहुदि॥ 53॥

सम्यग्दर्शन के बहिरंग निमित्त देव, शास्त्र, गुरु और अन्तरंग निमित्त कर्मो का क्षय, क्षयोपशम, उपशम है। इसलिए निमित्त की चर्चा कुन्दकुन्द आचार्य ने भी की है। अभी भी उस चर्चा को उड़ा नहीं सकते छोड़ेंगे तो एकान्त हो जायेगा। आपने बोला कि वस्तु में कुछ नहीं होता तो वस्तु किसका नाम है? वस्तु को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का लक्षण क्या है? ''**सत्-द्रव्य-लक्षणं**'' सत् किसे बोलते हैं? सत् किसका नाम है?- ''**उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्।**'' जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों अवस्था पाई जाती हैं उसका नाम है सत्। पहले नम्बर तो यह समझो कि- ''**गुण पर्ययवद् द्रव्यम्**'' अर्थात् गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है। द्रव्य के पास क्या है? गुण और पर्याय। जो गुणों में बदलाहट होती है उसी का नाम पर्याय है। गुणों की अवस्थायें जो बदलती हैं उसी के लिए ''**तद्भावः परिणामः**'' कहा है अर्थात् गुणों की अवस्थायें सदा बदलती रहती हैं। कभी संसारी के सद्गुण दुर्गुण बन जाते हैं, ज्ञान अज्ञान बन जाता है या मिथ्या ज्ञान बन जाता यह व्यवहार अवस्था है। यह गुणों की व्यवहारिक अवस्था है। आप मिथ्या ज्ञानी से सम्यग्ज्ञानी बन गया। यह पर्याय बदल गई। मिथ्याभासी से सम्यग्दर्शी बन गया यहाँ पर्याय बदली कि नहीं? और जैसे गृहस्थ पर्याय से मोक्षमार्ग की पर्याय बदलती है। आप गृहस्थ से मुनि बने पर्याय बदली कि नहीं। गुणों में जो बदलाहट आती है उसी का नाम पर्याय है। ''**गुण पर्ययवद् द्रव्यम्**'', '**सत् द्रव्य लक्षणम्**', **उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।**'' इन सूत्रों का चिन्तन करें तो हम पूर्ण रूप से अच्छे से वस्तु के स्वरूप को समझ सकते हैं। उत्पाद व्यय चलता रहता है। गुणों में जो बदलाहट होती है नई पर्याय उत्पन्न होती है वह उत्पाद हुआ, पूर्व पर्याय चली गई वह व्यय हुआ। यह चलता रहता है। सिद्धों में भी अर्थ पर्याय रूप परिवर्तन चलता रहता है वहाँ भी चेतन गुण है। गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। वहाँ पर सूक्ष्म परिणमन है

आन्तरिक परिणमन है। आचार्यश्री ने एक उदाहरण दिया था एक बॉटल का, एक बॉटल में गोली डाल दी, अन्दर पानी है, उस बॉटल को हिलाने से गोली ऊपर नीचे जाती है यह स्थूल परिणमन हो गया। यह स्थूल बदलाहट हो गई। दूसरी भी गोली आपको दिखती होगी लेकिन वह मुख के पास घूमती है। ढक्कन के बाहर नहीं आती, अन्दर की वस्तु को एक साथ बाहर नहीं आने देती। इस प्रकार से वो गोली वहीं-वहीं घूमती है। यह वहीं घूमने योग्य जो उदाहरण है ऐसी होती है अर्थपर्याय। और पूर्व वाली है व्यंजन पर्याय। ऊपर नीचे-ऊपर नीचे, चारों गतियों में हमारा घूमना हो रहा है यह व्यंजन पर्याय है और सिद्धों का आन्तरिक परिणमन हो रहा है सो वह है अर्थ पर्याय जिससे तो ज्ञान में सारे पदार्थ झलक रहे हैं। तो वही है ज्ञानगुण का सूक्ष्म परिणमन। ज्ञान ज्ञेयों की ओर परिणमन कर रहा है इसे अर्थ पर्याय हम समझ सकते हैं। द्रव्यों में कुछ नहीं होता ऐसा नहीं; द्रव्यों में उत्पाद-व्यय तो होता ही रहता है। वस्तु में यह सब चीजें हैं। वस्तु में अनन्त धर्म माने गये हैं। अगर इसको नहीं मानेंगे तो मिथ्यात्त्व हो जायेगा इस बात का भी हमें ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वयं पंचास्तिकाय ग्रन्थ में कहते हैं कि जो भी द्रव्य है वह द्रव्य किससे युक्त होता है तो वह गुण व पर्यायों से युक्त है। कहते हैं कि-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जयाणत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति॥ 12॥

पंचास्तिकाय में यह भी कहते हैं कि पर्याय के बिना या पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती '**दोण्णं अणण्ण भूदं**'- ये दोनों अभेद रूप हैं। द्रव्य और पर्याय को अभेद स्वरूप कहते हैं क्योंकि द्रव्य से अलग नहीं होती पर्याय। पर्याय और द्रव्य का अटूट सम्बन्ध है। द्रव्य में कुछ नहीं है; वस्तुओं में कुछ नहीं है ऐसा नहीं हो सकता, द्रव्य से न विलग पर्याय है ना गुण। गुणों की जो हालत है उसी का नाम पर्याय है। ये दोनों द्रव्य से अलग नहीं रह सकते कि द्रव्य कहीं अलग चला जाये और पर्याय कहीं अलग। लक्षण की अपेक्षा द्रव्य अलग है गुण अलग हैं और पर्याय अलग। उसी द्रव्य में जो गुण पाये जाते हैं उन गुणों की बदलने की जो अवस्था विशेष है वही पर्याय है इस

प्रकार से हमें समझना चाहिए। एक बर्तन में जैसे दूध रखा है, दूध अलग है, बर्तन अलग है। ऐसा गुण-गुणी में नहीं है आत्मा में या कोई भी द्रव्य में उसमें जो गुण हैं वे पूरे-पूरे उसी के ही गुण हैं, नहीं तो फिर गुण अलग हों, पर्याय अलग हो तो द्रव्य किसका नाम है? आगम तो कहता है कि- '**गुण पयर्यवद् द्रव्यं**'।

गुण पर्याय वाला द्रव्य है। इसके साथ में जैसी पर्याय होगी उस समय द्रव्य भी वैसा ही रहेगा या जैसा द्रव्य होगा वैसी उसकी पर्याय ही निकलेगी। यह बात अच्छे ढंग से समझ में आना चाहिए इसमें बहुत बड़ी भूल करते हैं लोग। ऐसी लहर चल रही है हवा चल रही है मानो जो मैंने कहा उसको भूल जाते हैं लोग। इसलिए हवा से बचो। कई लोग कहते हैं कि संसार में रहकर के भी मैं सिद्धत्व का अनुभव कर रहा हूँ जैसे सिद्ध परमेष्ठी शुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं। वैसा ही मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। देखो यह भी सम्भव है क्या? आप बताओ! द्रव्य जैसा होगा, उसकी पर्याय वैसी निकलेगी, जैसी पर्याय निकल रही है मतलब वैसा द्रव्य है। इस बात को लोग समझ नहीं पा रहे हैं। अनेकान्त की दृष्टि को देखा जाय तो वस्तु में अनन्त धर्म हैं और उनका हम अलग-अलग ढंग से कथन कर सकते हैं। आप सप्तभंग जानते हैं कभी सुना होगा आपने, और सुन भी लेना कभी; आज तो इतना ही कहता हूँ 'स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति' 'अस्ति' का मतलब- 'है', 'नास्ति' मतलब-'नहीं' है। लेकिन स्याद् लगाया है स्याद् का अर्थ क्या होता है? स्याद् मतलब 'कथंचित्'; कथंचित् मतलब क्या होता है? किसी एक अपेक्षा से; जैसे इस काल में इस अपेक्षा से इस द्रव्य में यह गुण मुख्य गुण है। और यह गुण गौण है या कोई एक अवस्था मुख्य कहो, यह है या यह नहीं है (किसी अपेक्षा से) जैसे कि आत्मा ज्ञान गुण की अपेक्षा जानती है। आत्मा दर्शन गुण की अपेक्षा देखती है। आत्मा स्याद् ज्ञायति, आत्मा स्याद् दर्शयति। आत्मा कथंचित् देखती है अर्थात् आत्मा एक अपेक्षा से देखती है। वो अपेक्षा क्या है? आत्मा ज्ञान की अपेक्षा जानती है, आत्मा दर्शन की अपेक्षा देखती है। अभी अनेकान्त की बात कही थी। अब आत्मा जानती ही है; यह क्या हो गया? एकान्त हो गया। अपेक्षा लगायी थी तो

दूसरा धर्म भी सिद्ध हो रहा था। लेकिन आपने अभी ''ही'' लगा दिया; आत्मा जानती ही है तो गलत हो गया इसका मतलब आत्मा देखती नहीं है। ऐसा मत कहो, ऐसा कहने से एकान्त हो जाता है। आत्मा जानती भी है ऐसा बोला जा सकता है, आत्मा देखती भी है। 'भी' लगाओ तो आत्मा जानती है लेकिन किसी अपेक्षा से देखती भी है। 'भी' लगाया तो अच्छा है। जैसे किसी ने कहा कि- यह ही पूजा विधान कर रहा है तो सुनते ही दूसरे को गुस्सा आ जाता है। क्या मैं नहीं कर रहा हूँ? आप भी कर रहे हैं। ऐसा कहते ही आप के ऊपर स्नेह झलकता है। आप भी में अनेकान्त है। 'ही' में एकान्त है और 'भी' में अनेकान्त है। देखो! सम्यक् एकान्त रूप भी कथन होता है जैसे- आत्मा ज्ञान-गुण की अपेक्षा जानती ही है। यह सम्यक् एकान्त हो गया। अर्थात् अपेक्षा लगाकर 'ही' लगाया तो अनेकान्त चलेगा। लेकिन हमें ध्यान रखना है कि कहाँ 'भी' लगाना है और कहाँ 'ही' बस अपेक्षा लगा कर ही 'ही' लगाओगे तो सम्यक् एकान्त होगा अन्यथा मिथ्या एकान्त हो जायेगा। हमेशा हमको अनेकान्त वाद से चलना है। जैन धर्म हमें सिखाता है कि अनेकान्तवाद हमें वस्तु के हरेक पहलू का ज्ञान करा देता है और वस्तु को जानने का सही उपाय है 'अनेकान्त'। और वस्तु में जो अनन्त धर्म होते हैं उन अनन्त धर्मों को जानने के लिए हमें अपेक्षा दृष्टि से कथन करना पड़ता है तब हम जान सकते हैं जैसे कि- राम पिता हैं, भ्राता भी हैं, जमाता भी हैं, पति भी हैं, और पुत्र भी हैं। किस-किस की अपेक्षा से? तो राम-लवकुश की अपेक्षा से पिता हैं, राम लक्ष्मण की अपेक्षा तो भ्राता हैं, राम सीता की अपेक्षा पति हैं, राम जनक की अपेक्षा जमाता हैं, और राम दशरथ की अपेक्षा पुत्र भी हैं। इस प्रकार राम के पास इतनी सारी अवस्थाएं हैं। राम के पास इतने सारे गुण हैं। लेकिन वे गुण अपेक्षा से हैं। राम पिता ही हैं, राम पुत्र ही हैं, ऐसा कह दो तो नहीं ; 'भी' कहना सीखो। राम पिता भी हैं, राम पुत्र भी हैं। राम पति भी हैं, राम जमाता भी हैं। ऐसा 'भी' लगाओ, बिना अपेक्षा 'ही' मत लगाओ। ही लगाओ तो अपेक्षा लगाकर लगाओ। जैसे राम लवकुश की अपेक्षा पिता ही हैं और किस अपेक्षा से, तो वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से क्योंकि कभी किसी दूसरे जन्म में भाई भी रहे होंगे। और वर्तमान में वर्तमान भव की अपेक्षा

लगानी पड़ेगी। इस तरह अपेक्षा लगाकर 'ही' लगायें तो सम्यक् एकान्त है और नहीं तो जिस कथन में अपेक्षा लगाये बिना 'ही' लगा दिया तो एकान्त मिथ्यात्व की कोटि में चला जावेगा। यह वस्तु को समझने का उपाय है। समझ में आ रहा है कि नहीं? शायद कुछ कठिन हो गया हो? कठिन नहीं हो इसलिये आपको सरलता से समझने लायक राम का उदाहरण दिया। तो वस्तु तत्त्व समझने के लिए हम आप ऐसी अपेक्षायें लगायें जिसमें कि एकान्त से बच जायें। अब कई लोग बोलते हैं कि- आत्मा तो शुद्ध, अखण्ड, चैतन्य पिण्ड है, मैं सिद्ध अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ जैसे सिद्ध परमेष्ठी वैसे मैं अनुभव कर रहा हूँ। इसमें नय व्यवस्था छूट गयी। आत्मा द्रव्य अपेक्षा से शुद्ध है, लेकिन उस द्रव्य में और भी अवस्थाएँ हैं आपने अपेक्षा लगाये बिना बोल दिया कि आत्मा शुद्ध है। यहाँ एकान्त हो गया। आप देखो- द्रव्य संग्रह में...

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ 2 ॥

यह बोला है नेमिचन्द्र आचार्य ने कि जीव उपयोगमयी है, जीव अमूर्तिक है, कर्त्ता है, भोक्ता है, और कितनी ही अवस्थाओं में वह स्वदेह परिमाण अपने देह प्रमाण है और संसार में भी है और वह शुद्ध भी है तथा ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला है। ये सब अवस्थाएँ एक जीव में हैं, लेकिन अपेक्षा लगा कर कथन करो कोई भी अवस्था इसमें गलत नहीं है। आत्मा भोक्ता भी है, कर्त्ता भी है, सब कुछ है वह सिद्ध भी है, वहाँ दूसरी मुक्त अवस्था में तो अपने ही भावों में लीन है, दूसरा कुछ नहीं करता है। संसार अवस्था में अलग अपेक्षा लगेगी, मुक्त अवस्था के लिये अलग अपेक्षा लगेगी। सिद्ध किस अवस्था में है? तो कर्मों से मुक्त अवस्था में सिद्ध है और कर्मों से सहित अवस्था में वह संसारी है। अब यह अपेक्षा नहीं लगाओगे तो एकान्त हो जायेगा। और कई लोग बोलते हैं कि आत्मा तो परम शुद्ध है ऐसा कहने वाले आत्मा के गुणों को तो मानते होंगे? फिर उन गुणों की पर्यायों को नहीं मानते क्या? उन गुणों की अवस्थाओं में यह संसारी अवस्था भी है? यह आत्मा कर्मों से सहित जब तक है तब तक सांसारिक अवस्था में हैं लेकिन द्रव्य की ओर दृष्टि रख कर कहो तो या द्रव्य की

अपेक्षा कहो तो शुद्ध है लेकिन उसमें हमें पर्यायों की भी अपेक्षा लगानी पड़ेगी, क्योंकि गुण और पर्याय द्रव्य से अलग नहीं है। अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो आप की दृष्टि में गुण और पर्याय कुछ चीज ही नहीं है ऐसा मानना पड़ेगा। वस्तु में गुण, पर्याय को नहीं माना तो आपने द्रव्य को ही नकार दिया। फिर द्रव्य का ही अस्तित्व समाप्त हो गया और एकान्त में भटक गये आप। यह सर्वज्ञ की यह वाणी है कि गुण और पर्यायों को भी मानना पड़ेगा जो द्रव्य में सदा हुआ करती है जैसा जो द्रव्य होगा वैसी उसकी पर्याय निकलेगी। अभी आपका द्रव्य अशुद्ध है। किस अपेक्षा से? तो संसार अवस्था में कर्मों से संयुक्त है इसलिए हमारा आत्म द्रव्य अशुद्ध है उसे सिद्ध परमेष्ठी के समान अनुभूति कैसे हो जायेगी? उसकी पर्याय शुद्ध कैसे निकलेगी? संसार अवस्था छोड़ कर जब आप कर्मों से रहित हो जायेंगे तो शुद्ध पयार्य निकलेगी, और उसी प्रकार का अनुभव भी आपको होगा। इसी तरह से पंचास्तिकाय में कहा है कुन्दकुन्द आचार्य ने कि-

दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो, दव्व गुणाणं हवदि तम्हा॥ 19॥

द्रव्य के बिना गुण (वस्तुओं के जानने देखने आदि रूप लक्षण वाले) नहीं और गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता इस कारण गुण और द्रव्य का जुदापन नहीं है। ऐसा समझना चाहिए कि वे एक दूसरे से मिलकर रहते हैं यह हमने वस्तु स्वरूप को समझा है। इस प्रकार हम लोग इस पर्याय गुण और द्रव्य की चर्चा जो सुन रहे हैं द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों में सत्ता भेद या प्रदेश भेद नहीं है इसलिए पर्याय; गुण व द्रव्य से तन्मय होती है इसलिए यदि पर्याय अशुद्ध है तो उस पर्याय का अधिकरण भूत द्रव्य या गुण भी अशुद्ध होगा। वस्तुतः उस द्रव्य के गुणों का परिणमन ही तो पर्याय है ऐसा कहा गया है। प्रवचनसार में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि-

परिणमदि जेण दव्वं, कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो, आदा धम्मो मुणेदव्वो॥ 1-8॥

जिस समय जिस स्वभाव से द्रव्य परिणमन करता है, उस समय उसी स्वभावमय द्रव्य हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है इसलिए धर्म से परिणत

आत्मा को धर्म समझना चाहिए।

इस प्रकार हम लोगों ने यहाँ पर द्रव्य और पर्याय के बारे में समझा है और हम लोग इसी तरह से अनेकान्त की सिद्धि करते जायेंगे तो द्रव्य को गुण व पर्याय से सम्पन्न मानेंगे तभी हम इस अनेकान्त धर्म को पा सकते हैं।

अगर पानी अग्नि के सम्पर्क से गर्म हो गया तो गरम उसकी विभाव पर्याय है और वह पानी उस अग्नि से प्रभावित हुआ है इसलिये ये उसमें उष्णपना हमें दिख रहा है। वैसे तो शीतलपना इसका स्वभाव है। इसी प्रकार हमारे अन्दर जो व्यवहार परिणतियाँ दिख रही हैं वे कर्म से प्रभावित हैं।

गुरु महाराज ने एक बात कही थी जैसे किसी ने बहुत अच्छे ढंग से खीर खाई और अच्छे उसमें बादाम, पिस्ता वगैरह मेवे भी डाले गये थे केशर और शक्कर तो आप लोग मिला ही लेते हैं और नहीं तो फिर किशमिश या मुनक्का मिला लेते हैं और खीर खाकर के वह डुबकी लगाता है; किसमें? छाछ के टेंक में। तो छाछ के टेंक में डुबकी लगाये तो डकार किसकी आयेगी? छाछ की या खीर की? मीठी-मीठी जैसी डकार आयेगी और मान लीजिए मठा पीकर के दूध के टैंक में डूबता है तो कैसी डकार आएगी? खट्टी आएगी। तो भैया! लोग रहते तो हैं विषय भोगों में कषायों में लीन और चिन्तन भी इन्हीं विषयों का करें, सब कुछ कषाय आदि रूप भी उसी प्रकार के भाव करते रहें और सोचे कि हमें शुद्धात्मा का अनुभव हो जाये, तो हो जायेगा क्या? अरे! मन्दिर में बैठे रहो या कहीं भी समवशरण में भी क्यों ना चले जाओ तो भी तुम्हारे अन्दर जो भरा है वह ही ख्याल में आता रहा तो बाहर में भी वैसी ही परिग्रह की लालसा विषय विषयासक्ति व राग-द्वेष रूप परिणति बनी रहेगी। और अगर मानो जिसने अन्दर से विषय कषायों का त्याग कर दिया है, व्रत, नियम, संयम को अंगीकार किया है ऐसे कोई योगी, अगर तुम्हारे घर में आहार के लिए आ जायें तो जहाँ जिस गृह में पंच पाप हो रहे हैं वहाँ भी उनको अपना शुद्ध द्रव्य या कहना चाहिए विषय कषायों से रहित वह अवस्था ही उनके अनुभव में आयेगी। उनको तुम्हारा विषय कषायों का स्वाद नहीं आयेगा तो ध्यान रखो जहाँ पर हम जैसे हैं जिस पर्याय से युक्त हैं वैसा ही अनुभव होगा। बिना उसके हम नहीं रह

सकते। कहने का अर्थ है कि - वर्तमान पर्याय को हमें देखना चाहिए और उससे प्रभावित होती है आत्मा और उस पर निमित्त का प्रभाव जरूर पड़ता है। केवल आत्मा को शुद्ध ही कहकर एकान्त को न पकड़ें। अनेकान्त को हम समझे जानें और अपने जीवन को महान बनाने की कोशिश करें। निमित्त का प्रभाव भी जरूर पड़ता है और इस संसार में आप प्रभावित होते हैं कर्मों से। अगर ऐसा न होता तो वह पानी की बूंद सर्प के मुख में जाकर के विष क्यों बनती है? उसका प्रभाव पड़ता है कि नहीं, वही पानी की बूंद जाकर के गन्ने के वृक्ष पर जाकर मीठा रस बन जाता है। और वही पानी की बूंद स्वाती नक्षत्र में सीप पर पड़ने से मोती भी क्यों बन जाती है? ये सब निमित्त का ही प्रभाव है। देखो अनेकान्त समझने के लिए एक और उदाहरण है। एक बार एक नगर में एक हाथी आया। हाथी को देखने के लिए प्रायः सब लोग गये। और वहाँ पर चार अंधे भी आये। और आकर के वे विचार करते हैं कि हम भी हाथी को देखें लेकिन अंधा कैसे देख सकता है। सबने हाथी को अपना-अपना हाथ लगाया तो एक ने हाथी की पीठ पर हाथ लगाया और बोला अरे-रे! आज जाना कि हाथी ऐसा होता है हाथी तो दीवार जैसा होता है। दूसरे ने क्या किया? हाथी का पैर छुआ और बोला अरे-रे! हाथी तो खम्भे जैसा होता है। और तीसरे ने क्या किया? हाथी की पूँछ को पकड़ा हाथी के बाल बहुत कड़क होते हैं, झाडू के समान, तो बोला कि अरे-रे! आज हमने जाना कि हाथी तो झाडू के समान होता है। चलो अब चौथे नम्बर का साथी हाथी के कान को पकड़ता है और बोलता है अरे-रे! हाथी तो सूपा जैसा होता है मुझे आज मालूम पड़ा। अब चारों के चार एक जगह जाकर बैठ गये, भाग्य योग से एक जगह बैठकर चर्चा करने लगे। आज तो हाथी देख लिया हमने ऐसा बोले। एक बोला कि मैंने तो छूकर के देखा है कि हाथी तो दीवार जैसा है। दूसरे ने बोला कि अरे- क्या बोल रहा है हाथी तो खम्भे जैसा है मैंने स्वयं देखा है। नहीं नहीं ऐसा तीसरा बोला कि हाथी तो झाडू जैसा है। चौथा बोला तुम सब चुप बैठो मैंने सही सही देखा है हाथी तो सूपे जैसा होता है। अब चारों में आपस में खूब विवाद हुआ और खींचा तानी हुई और उसके बाद फिर इतना झगड़ा बढ़ गया कि मरने मारने को भी तैयार हो गये। ये मामला बहुत

उलझ गया। इतने में ही एक व्यक्ति वहाँ से निकले वे बहुत बड़े ज्ञानी थे तो उन्होंने कहा सुनो तुम लोग क्यों झगड़ रहे हो? तुम सभी की बातें सत्य हैं देखो मैं इसका निर्णय करता हूँ। हाँ भाई सब बैठ जाओ और जैसा देखा हो वैसा ही बोलो हमारे लिए। फिर सभी ने अपनी-अपनी बात कही, फिर ज्ञानी बोले कि तुम सबकी बात सत्य है लेकिन ध्यान रखो एक ही हाथी में यह सभी अवस्थाएँ विद्यमान हैं, तुम सब उन अवस्थाओं को अलग-अलग समझकर बोल रहे हो लेकिन तुम लोगों ने जो देखा उन सभी को मिलाकर एक हाथी है। हाथी पीठ की अपेक्षा दीवार जैसे है, हाथी पैर की अपेक्षा खम्भे जैसा है, हाथी पूँछ की अपेक्षा झाड़ू जैसा है और हाथी कान की अपेक्षा सूपे जैसा है। ये सारी बातें एक हाथी में है। तुम्हारी आँखे नहीं हैं इसलिए तुम अवस्थाओं को युगपत् सभी देख नहीं सकते हो, तुमने हाथों से देखा, इसलिए ऐसा लग रहा है। इसलिए तुम ऐसा बोल रहे हो। यह सारी अवस्थायें एक ही हाथी में हैं और तुमने जो-जो देखा वह सत्य है। और अपेक्षा लगाओ तो एक-एक वस्तु जैसा हाथी कहना भी सत्य है, अपेक्षा लगाये बिना हाथी ऐसा ही है ऐसा कहना तो एकान्त होता है और एकान्त में झगड़ा होता है। जैसे बोलो कि आत्मा-शुद्ध ही है तो झगड़ा होगा क्योंकि तुमने आत्मा की संसार अवस्था को स्वीकार नहीं किया। तुमने आत्मा की अशुद्ध पर्याय अवस्था को स्वीकार नहीं किया तो तुमने द्रव्य को भी नकार दिया। वस्तु में कुछ होता ही नहीं है ऐसा कहना पड़ेगा। यदि उसमें गुण और पर्याय बदलती रहती है तो उत्पाद व्यय को मानना पड़ेगा आपको। संसार भी तो एक पर्याय है, यह व्यवहार व व्यंजन पर्याय रूप है अन्यथा अनेकान्त धर्म को कैसे माना जाय। अगर एकान्ती हो गये तो एकान्त भी एक मिथ्यात्व कहलाता है। इसलिए एकान्त-वाद छोड़ो। संसारी अवस्था में आत्मा अशुद्ध भी है ऐसा बोलो, भोक्ता भी है, कर्त्ता भी है, सब कुछ है आत्मा। और मुक्त अपेक्षा से शुद्ध है। इसलिए सब अपेक्षायें हैं अपने-अपने स्थान पर हैं, उसके माध्यम से द्रव्य की सिद्धि होती है। एक द्रव्य में, वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं। ये सब धर्म हैं उसके सब धर्म उसमें होते हैं। ज्ञान, दर्शन आदि अनेक धर्म होते हैं, और इन सब में वस्तु की सिद्धि होती है। इसलिए 'भी' को हमेशा ध्यान रखो 'ही' से दूर

रहो। 'ही' लगाना हो तो सम्यक् एकान्त में लगाना, अपेक्षा लगा कर लगाना और इसके बिना लगाया तो आप एकान्त में भटक जाएंगे, मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे। इसलिए हम लोग हमेशा अनेकान्त से चलें और एक आपके लिए गाथा कहूँ-

जई जिणमयं पवज्जइ, ता मा ववहार णिच्छए मुयइ।
एएण विणा धिज्जइ, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

इस गाथा में क्या बताया यदि स्याद्वाद रूपी ध्वजा से सहित अनेकान्त मय धर्म का रथ प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक को भी नहीं छोड़ो। व्यवहार भी हमें जानना है, निश्चय भी हमें जानना है। ये जानने के उपाय हैं ये वस्तु में नहीं है लेकिन जानने के उपाय हैं। इन उपायों से वस्तु का ज्ञान कर सकते हैं और इनको हमने नहीं जाना और नहीं लिया इनका सहारा तो वस्तु के स्वरूप को हम नहीं जान सकते हैं। और वस्तु की शुद्ध अवस्था ही निश्चय है और वस्तु की जो और भी अवस्थाएं हम देखते हैं कर्मों से सहित अवस्थाएँ हैं तो व्यवहार नय से उनको जानते हैं। तो इस प्रकार से हम लोग वस्तु को समझने के लिए नयों का आलम्बन लेकर और 'ही' से 'भी' की और बढ़ें, आचार्यश्री विद्यासागरजी का पद्य है-

ही से भी की ओर यदि, बढ़ें सभी हम लोग।
छः के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग॥

मतलब कि 'ही' से 'भी' की ओर अगर यदि हम बढ़े तो वहाँ पर क्या होता है अनेकान्त का योग हो जाता है। अनेकान्त धर्म का पालन हो जाता है। इसलिए हम लोग छः के आगे तीन; ये क्या है? मेल का आकड़ा है। हाँ! और एक दूसरे के पूरक भी हैं यही अनेकान्त धर्म है। हमारे लिए वस्तु के सभी धर्म जो उसमें बैठे हैं उन अनन्त धर्मों की सिद्धि ये 63 के अंक कर देते हैं। इसलिए हमें 36 का आकड़ा नहीं रखना। 36 का अर्थ उल्टा होता है। 36 के आकड़े में अंक एक दूसरे से विपरीत होते हैं जबकि 63 का आकड़ा एक दूसरे का पूरक होता है। हमारे लिए अनेकान्त धर्म के उपदेश से विश्व में शान्ति का योग हो जाता है और इसके सामने सब झगड़े समाप्त हो जाते हैं। बस इतना हमने जो

बोला यदि गुरु पर श्रद्धा हो तो तुरन्त लोग सच्चे श्रद्धालु बन करके अनेकान्त को समझ सकते हैं। और श्रद्धा नहीं है तो ऐसे ही संसार में भटकते रहेंगे गुरु बोलते-बोलते चले जायेंगे फिर भी नहीं सम्हल पायेंगे और अपने एकान्त मिथ्यात्व रूप हठाग्रह मार्ग को नहीं छोड़ेंगे तो फिर वे इस संसार से तिरने वाले नहीं हैं। इसलिए इस अनेकान्त धर्म को सच्ची श्रद्धा से समझ करके और उसे जीवन में पालन करते हुए मोक्ष की ओर कदम बढ़ायें, इसी में आत्मा का उद्धार होगा। कहा भी है कि-

आचरण शैतान को इंसान बना देता है।
माली वीरान को गुलिस्थान बना देता है।
और कहाँ तक कहें कि-
मोक्षमार्ग की सीढ़ी पर चढ़ने से-
त्याग इंसान को भगवान बना देता है॥

- महावीर भगवान की जय -

5- अनादि विश्व और वर्तमान दृष्टि

मङ्गलाचरण

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः ।।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्यमूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय ।।

समूचे विश्व पर वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाय तो 'षट्काल व्यवस्था एवं काल परिवर्तन और उसके निमित्त' बड़े ही महत्वपूर्ण विषय हैं और आज की जनता के लिए सराहनीय और अनुकरणीय भी हैं।

छह काल कैसे होते हैं, उनमें क्या-क्या व्यवस्थाएँ होती हैं? कर्म भूमि व भोग भूमि में होने वाले षट्काल परिवर्तन और साथ-साथ में उनके धार्मिक जीवन, उनके व्रत-आचरण और वहाँ से होने वाली गति-अगति इत्यादि के बारे में सब सुनेंगे। कैसे प्रलय होता है? फिर कैसे रचना होती है? इन सब बातों का विवरण आएगा हम कहाँ बैठे है? सारा वर्ल्ड कहाँ है? जिसको आज हम विश्व बोलते हैं और उसका विस्तार कितना है? लोग तो कूप मंडूक जैसे बनके बैठे हैं एक कुए में जैसे मेंढक होता है और बोलता है कि यही कुआ ही पूरा संसार है। लेकिन कितना बड़ा है संसार? जब कुए से बाहर आए तब जाने। ऐसे ही समूचे विश्व के सम्बंध में हम सुनेंगे। "भूरामल" शास्त्री जी जैसे महान ऐसे चोटी के विद्वान हो चुके हैं और जो कि 'वीरोदय' जैसे काव्य लिखने वाले महान ज्ञानी थे जिस काव्य में मिथ्या मतों का खंडन किया गया है। जब "बनारस" में किसी ब्राह्मण विद्वान ने बोला कि आपके जैन दर्शन में क्या साहित्य है? कुछ भी नहीं है संस्कृत में साहित्य! तब उन्होंने 'वीरोदय काव्य' नामक चित्रालंकार काव्य बनाया था और मुनि दीक्षा अंगीकार करके (आचार्य विद्यासागरजी के गुरुवर) आचार्य ज्ञानसागरजी बने थे। जिनके काव्य को पढ़कर विद्वान दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। जब बड़े-बड़े विद्वानों के पास वह काव्य पहुँचा। तो उन्होंने कहा मुझे पढ़ना मुश्किल हो रहा है, इसका अर्थ मैं कैसे करूँ आप ही करेंगे इसका अर्थ, ऐसा पन्नालाल साहित्याचार जी जैसे बड़े-बड़े विद्वानों ने बोल दिया था।

हम साहित्याचार्य हो करके भी इसके गूढ़ अर्थों को नहीं निकाल सकते; आप ही निकाल सकते हैं या आपके चरणों में बैठकर ही हम इसका अर्थ कर सकते हैं। तब उन्होंने स्वयं ही उस काव्य का अर्थ किया था। ऐसी ही आगमिक परम्परा के प्रभाव से जो यहाँ संगोष्ठी हो रही है। इसका एक ही उद्‌देश्य है कि आज जो कई विद्यालयों में तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थसिद्धि के तीसरे, चौथे अध्याय को छोड़ दिया जाता है; क्या उनका जिनधर्म पर विश्वास नहीं है? लेकिन बच्चों के लिए जो आज स्कूल में पढ़ाया जाता है उसमें विज्ञान कुछ कहता है और हमारा यह जैन दर्शन कुछ; लेकिन हम ये नहीं सोच पाते हैं और न लोगों को बता पाते हैं कि विज्ञान भी कितना हमारे जैन दर्शन की ओर आया है ? और कितने सारे तथ्यों को उसने स्वीकार किया है। हमारे जैन दर्शन के बिना विज्ञान का नाम नहीं चल सकता। जर्मनी की लायब्रेरी में जो नाम है ''गंधहस्ती महाभाष्य'' का; वह गंधहस्ती महाभाष्य तत्त्वार्थ सूत्र की टीका रूप है, 18000 श्लोक प्रमाण में है, ऐसा शास्त्र समन्तभद्र आचार्य के द्वारा आज से 2000 वर्ष पहले बनाया गया था। कितना विशाल वर्णन होगा उसमें, तीसरे-चौथे अध्याय का, सारे भोग भूमि, कर्म भूमि, सारे ज्योतिष्क विमानों का कितना विस्तृत विवेचन होगा। आज उसका नाम है केवल लायब्रेरी में, ग्रंथ नहीं दिखाते वे हमारे लिए। वह ग्रन्थ वहाँ होना अवश्य चाहिए। आज वहाँ संस्कृत पढ़ते हैं लोग और संस्कृत सीखते भी हैं। जर्मनी में हमारे देश से गये साहित्य को वे सुरक्षित रखे हुए हैं और उस पर रिसर्च करते हैं और उसमें से वैज्ञानिक लोग नई-नई खोजों पर पहुँचते हैं। ये अणु-परमाणु नाम कहाँ से आए। ये जैन दर्शन के ही नाम है। परमाणु किसको बोलते हैं, हमारे यहाँ आया है कि जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता वह परमाणु है लेकिन आज के वैज्ञानिकों का परमाणु तो किसी यंत्र से दिखता है जो कि जैन दर्शन से चर्म चक्षु का विषय नहीं है। परमाणु का जैन दर्शनानुसार जो दूसरा भाग नहीं हो सकता उसे आज के वैज्ञानिकों न्युट्रान, प्रोट्रान ऐसे भेद भी करके बतला दिये जिस वजह से वह जैन दर्शनानुसार परमाणु न रहकर स्कन्ध ही ठहरा।

आज सूर्य, चाँद के सम्बंध में जैन दर्शन क्या कहता है? विज्ञान क्या

कहता है? यह बहुत ही अच्छा विषय रहा। सबको इतना रुचिकर लगा कि एकटक होकर सब लोग देख और सुन रहे हैं। हम जानते हैं कि इस सम्बंध में तत्त्वार्थसूत्र के अलावा सर्वार्थसिद्धि में और राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में भी बहुत विस्तृत रूप से लिखा है। हमारा एक तरफ से तो दुर्भाग्य है कि वह गंधहस्ति महाभाष्य जो कि तत्त्वार्थसूत्र पर टीका के रूप में अठारह हजार श्लोक प्रमाण में लिखा गया था। जिसका नाम जर्मनी की लायब्रेरी में है। हमको उसका दर्शन नहीं। नहीं तो हम कितना विशाल ज्ञान प्राप्त कर सकते थे; सब शंकाएँ उसमें दूर हो जाती। कोई बात नहीं है; आज भी हमें जिनदर्शन पर श्रद्धा या आस्था कराने वाले गुरु लोग विद्यमान हैं। हमारे पुण्य से आस्था अपने आप होती है। तरह-तरह के उदाहरण, तर्क या अनुमानों से हम उनकी सिद्धि कर लेते हैं। कभी-कभी या दशलक्षण में वाचन करते हैं, अर्थ बताते हैं तत्त्वार्थसूत्र का, तो कभी भी हमें शंकाएँ नहीं रहती। शंका इस रूप से कि हमारा जैन दर्शन आज विज्ञान की बात से बहुत पीछे तो नहीं है? या यह सत्य है, या असत्य है? ऐसा कभी मेरे मन में नहीं आता। बल्कि अच्छी तरह से सिद्ध करके बताता हूँ, जिस वजह से कि सामने वाले व्यक्ति नि:शंक होकर मौन हो जाते हैं। यह भगवान की ही महिमा व कृपा समझना चाहिए या जिनकथित शास्त्र का प्रभाव। हमारे सूत्रों ग्रंथों में भी तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्र हैं या षट्खंडागम के सूत्र हैं। इन सूत्रों में भी अनेक अर्थ भरे हुए हैं। हम जितनी भी बार पढ़ते हैं आचार्य श्री कहते हैं, प्रति वर्ष नयी-नयी बातें, नये-नये चिंतन आते हैं। वास्तव में वह सूत्र कैसा होता है? उसकी परिभाषा ये है कि **''अणंत अत्थ गब्भिद्विदादो सुत्तो''** अनन्त अर्थ जिसके गर्भ में स्थित होता है वह सूत्र है। यह आगम वाक्य है। 'गागर में सागर' के समान सूत्र होता है। जैसे कि एक छोटे से झरने से निकलती है पानी की धारा और फिर विशाल एक नर्मदा जैसी नदी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। वैसे ही इन सूत्रों से अनन्त अर्थ निकलता है हम जितना अर्थ निकालते जायँ उतना निकलता जाता है और आज वही हमने देखा और सुना।

सूर्य, चाँद के बारे में कहा जाता है कि ज्योतिष्क विमान यहाँ से 790 योजन से शुरु होकर 110 योजन के भीतर हैं। सुमेरू पर्वत से वे 1121 योजन

दूर होकर के परिक्रमा लगाते हुए हमेशा गतिमान रहते हैं। हमारी इस चर्चा का मुख्य मन्तव्य ये रहा है कि आज कई जगह हमारे जैन दर्शन से अनभिज्ञ लोग हमारे जैन ज्योतिष्क के विषय पर विश्वास नहीं करते हैं और कई विद्यालयों में जैसे पण्डितजी ने यहाँ कहा कि तीसरे चौथे अध्याय को उपेक्षित किया जाता है। इतने अच्छे से सूत्रों का अर्थ नहीं बता पाते हैं। इसलिए उसको गौण कर देते हैं। अपने जिनदर्शन को इस तरह से गौण करना ठीक नहीं है अगर तर्क, अनुमान से उसकी सिद्धि हो सकती है तो क्यों न हो उसको अच्छे ढंग से सिद्ध करके बतलायें। अपने सामने एक युवा विद्वान ने चन्द्रमा पर पहुँच इस रहस्य को बताते हुये बिल्कुल यह बता दिया कि चन्द्रमा पर हम कतई नहीं पहुँचे हैं और ये सब चन्द्रमा पर पहुँच का विषय झूठा है और विज्ञान के कई चित्रों से भी आपको सिद्ध करके बता दिया गया। इसका मतलब यह है कि यह सत्य है और आगम से प्रमाणिक है कि सूर्य पहले है और चन्द्रमा उसके ऊपर है सूर्य की गर्मी इतनी ज्यादा मानते हैं कि अगर वहाँ यह विमान जायेगा तो निश्चित रूप से जल जायेगा अतः वहाँ पहुँच ही नहीं सकते। वहाँ चन्द्रमा आदि पर ऐसा प्रकाश भी नहीं रह सकता जो आप यहाँ पर देख रहे हैं कि उनकी परछायीं पड़ सके। जैन दर्शन से तो बिल्कुल गलत ही है वह परछायीं पड़ने वाली बात। क्योंकि वह एक देव का विमान है और देव लोग उसकी रक्षा किया करते हैं। उसके अन्दर यहाँ के लोगों का प्रवेश पाना असंभव है। वहाँ ऐसी धूल या ऐसी मिट्टी नहीं मिल सकती और न ही वहाँ इस प्रकार की जैसी वायु ही है। वहाँ पर श्वास भी लेते हैं, उनकी श्वास के लिए वायु वहाँ पर है किन्तु हम ये कह सकते हैं कि वहाँ पर यहाँ जैसी मिट्टी, वायु वगैरह नहीं है। वे यहाँ से जाने वाले आज के लोग कहीं और जाकर उतरे हैं; लगता है कि कहीं किसी पर्वत पर गये हों। बड़े-बड़े पर्वत हैं इस भूमि पर जहाँ सामान्य मनुष्यों का जाना अशक्य है। उसको हम विजयार्ध पर्वत बोलते हैं जो 25 योजन ऊँचा है इस भूमि से 10 योजन ऊपर उस पर्वत पर कुछ चमकीले स्थल भी हैं जहाँ पहुँच कर ज्योतिष लोक जैसा भ्रम हो सकता है। विजयार्ध की गुफा जिसे कि चक्रवर्ती खोलता है। उस गुफा को खोलते समय उसको अपने रत्न का प्रयोग करना पड़ता है तब उसमें से छः महीने तक

आग निकलती है और उसे वहाँ थोड़े दूर ही ठहरना पड़ता है अपनी सेना के साथ। आप देखिये; पाँच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाला चक्रवर्ती उस पर्वत को नहीं लाँघ पाया; तो हम कैसे जा सकते उस पर। म्लेच्छखण्ड भी नहीं पहुँच पाते हैं तो चन्द्रमा पर पहुँचने की बात तो अलग ही है। चक्रवर्ती इतनी शक्ति रखने वाला, रत्नों का स्वामी होकर के विशेष शक्ति रखने वाला होकर के वह विजयार्ध पर्वत के ऊपर भी नहीं जा पाया, लाँघ नहीं पाया उसको। तो आज का विमान कहाँ गया होगा हम सोचें। हो सकता है वे किसी ऐसे ही बड़े पर्वत पर पहुँचे हों बीच में। लेकिन चन्द्रमा पर जाना बड़ी दुर्लभ बात है। वह देवों का विमान है जहाँ रक्षक देव भी नियुक्त रहते हैं। वहाँ वे वैज्ञानिक कदापि नहीं पहुँच सकते।

इसी तरह जो लोग कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है और ये ज्योतिष्क स्थिर हैं। लगता तो ऐसा ही है जब दूर से हम किसी चीज को देखते हैं जैसे कि आप ट्रेन में चलते हैं तो आपको ऐसा लगता है कि रेल तो रुकी हुई है और भूमि घूम रही है। लगता है न कि भूमि घूम रही है? हो सकता है कि इतने ऊपर से देखते समय ऐसा ही लगता हो उल्टा ही देखने में आता हो कि हम किसी विशेष स्थान पर हैं और यह भूमि घूम रही है। चन्द्र पर से देखने का अनुमान बिल्कुल असभंव ही है। क्योंकि वे देवों के विमान हैं और रत्नों से जड़ित हैं और मणियों से बने हुए हैं ऐसे चन्द्रमा आदि पर जाना बिल्कुल ही असंभव है। आगे एक बात और कहना चाहता हूँ कि एक शंका आपके मन में हो सकती है उस शंका का समाधान मैं अभी दे दूँ, आप सुनते रहते हैं तीर्थंकर का अभिषेक सुमेरु पर्वत पर होता है, मेरु पर्वत पर होता है। इस भूमि से निन्यान्वे हजार योजन ऊपर जाकर सुमेरु पर्वत पर एक पाण्डुक वन है जिसकी ईशान आदि चारों विदिशाओं में पाण्डुकशिला, पाण्डुकंबला शिला, रक्तकंबला शिला और रक्ताशिला नामक चार अर्धचन्द्राकार शिलाएँ हैं। इन शिलाओं पर क्रमशः भरत, अपरविदेह, ऐरावत और पूर्वविदेह के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। हमारे भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक ईशान दिशा की पाण्डुक शिला पर होता है। यह विषय तो हमने समझ लिया, लेकिन हमें बताइए कि ज्योतिष्क विमान ऊधर्वलोक में हैं

कि मध्यलोक में हैं? किसी-किसी के मन में ऐसी भी शंका हो सकती है। इसी बात को आगे बतला रहा हूँ कि सुमेरु पर्वत एक लाख चालीस योजन का है। एक हजार योजन की तो उसकी जड़ है, इस भूमि से 99,040 योजन ऊँचा या ऊपर है। ये सूर्य, चाँद यहाँ से 790 योजन से शुरू हो जाते हैं और 900 योजन के अन्दर-अन्दर ही हैं ऐसा समझ लीजिए। एक हजार योजन भी पूरा नहीं हो पाया। 99,040 योजन उँचा सुमेरु पर्वत है। वहाँ तक मध्यलोक चलता है। तो फिर सूर्य चांद ऊर्ध्वलोक में कैसे हो सकते हैं इतना ज्ञान भी हमें रखना है। बड़े-बड़े लोग इसको भूल जाते हैं। ऊपर दिखते हैं इसलिए ऊर्ध्वलोक में है ऐसा कहते हैं लेकिन, ऊपर जहाँ तक मेरु है या स्वर्ग के पहले तक ये सारा मध्यलोक है। अच्छा बतलाइए कि तीर्थंकर का अभिषेक ऊर्ध्वलोक में होता है या मध्यलोक में। मध्यलोक में न? सूर्य-चाँद से भी बहुत ऊपर होता है भूमि से 99,000 हजार योजन ऊपर जाकर अभिषेक होता है, फिर भी मध्यलोक में होता है। अच्छा चलो बात तो सिद्ध हो गयी। मेरु पर्वत की जो चालीस योजन की चूलिका है उसके बाद एक बाल का मात्र अन्तर है कि उसके ऊपर स्वर्ग का ऋजु विमान है। नील मणि से बने हुआ ऋजु विमान से ही सौधर्म, ईशान स्वर्गो का प्रारंभ हो जाता है ऐसा समझना चाहिए। नीलमणि से बना होने के कारण आकाश हमको नीला-नीला दिखता है। समझ रहे हैं क्या? और सुनिये! बात यहाँ पर ऐसी है कि; शंका तो आपको नहीं है, तो भी मैं शंका उत्पन्न करा रहा हूँ और समाधान भी दे रहा हूँ। शंका उसे ही होती है जिसे आगम का कुछ ज्ञान हो, पूर्ण ज्ञानी को शंका कदापि नहीं होती। अत: कभी तो भी आपके मन में एक शंका हुई होगी कि आज हम देखते हैं कि थोड़े दूर ऊपर जाने के बाद वायु नहीं मिलती। जिस प्रकार की वायु जो हमें चाहिए, ऑक्सीजन वायु नहीं मिलती। कुछ दूर जाने के बाद वायु का प्रेशर भी नहीं रहता, जिससे कि हम वहाँ स्थित रह सकें, उसके ऊपर तो एकदम उड़ने लग जायेंगे। फिर तीर्थंकर इतने ऊपर कैसे जाते होंगे? यह शंका दिमाग में उत्पन्न करो पहले। उत्पन्न हो गई न? अब समाधान लो। समाधान ये है कि पहले 500-500 धनुष की काया होती थी। तो वृक्ष भी कितने ऊँचे होते होंगे। दूसरा भी आप सोचेंगे कि ऐसा सीधा ऊपर की

ओर जाते होंगे तो ऐसा भी नहीं है। इस उत्तर दिशा तरफ सुमेरु पर्वत है। तो ऐसे तिरछे जाते होंगे धीरे-धीरे उनको ले जाते होंगे। जब ऐरावत हाथी पर बैठ होते हैं तो ऐसे तिरछे ही ले जाते होंगे। यहाँ से आगे यहाँ से ऊँचे पर्वत वगैरह मिलते चले जाते होंगे। पर्वत है, भोग भूमियाँ हैं, धीरे-धीरे वहाँ से ऊपर की ओर हुए जाते होंगे। वहाँ उनको वायु का प्रेशर मिलता रहता होगा। फिर धीरे-धीरे सुमेरु पर्वत के पास वायु का प्रेशर और ऊपर तक है। क्योंकि वह एक लाख 40 योजन का है और वहाँ उसमें वन हैं, जंगल हैं सब है। इसलिए कोई बाधा नहीं आती है। बाधा होना संभव नहीं है। समाधान हो गया न! बस अब। अब दूसरी बात यह है कि लोगों के मन में ऐसी भी शंका हो सकती है कि बड़े-बड़े तालाबों में बड़े-बड़े कमल हैं, वे भी एक-एक योजन आदि के हैं उन पर महल भी बने हुये हैं। कुछ लोग तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ते समय समझ नहीं पाते, इसी वजह से उसका वर्णन छोड़ देते हैं। उन तालाबों में जो कमल बने हुए हैं उनमें से पहला कमल एक योजन का है, आगे दुगने-दुगने विस्तार वाले होते गये हैं, उनमें भी महल बने हुए हैं। उनमें देवियाँ निवास करती हैं और कमल पृथ्वीकायिक है। जैसे कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक होते हैं वैसे ही ये कमल भी पृथ्वीकायिक हैं। आप लोग सोचेंगे कि पृथ्वीकाय का कमल किसने बनाया? उन तालाबों की रचना किसने की? ये मिटते नहीं हैं क्या? ये सब प्रश्न आप करते होंगे, किन्तु आप लोगों से मैं एक प्रश्न करता हूँ कि अकृत्रिम जिनालयों में 500-500 धनुष ऊँची प्रतिमाएँ भी होती हैं। उनको किसने बनाया? और सूर्य, चाँद आदि को किसने बनाया उनको इतना गोल किसने बनाया? इसका उत्तर दे दो पहले। आप उत्तर देते हैं तो फिर उसके बाद मैं इसका रहस्य बताऊँगा। अच्छा सुनो! सूर्य, चाँद को किसी ने तो बनाया होगा, तो उसने उजाले में बनाया होगा कि अंधेरे में? अरे! अंधेरे में बना सकता है क्या कोई? अगर उजाले में बनाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि कोई सूर्य पहले भी था। तो उसको किसने बनाया था? और बनाने वालों को किसने बनाया था? उसको अंधेरे में बनाया कि उजाले में बनाया था? इन प्रश्नों का जवाब नहीं मिल सकता। ये अनादि अनिधन व्यवस्था है। किसी ने नहीं बनायी यह अकृत्रिम व्यवस्था। कृत्रिम या ये सब बनाने की

चीजें नहीं हैं। जैसे सूर्य, चाँद को किसी ने नहीं बनाया वे अनादि काल से हैं। न मिटते हैं और न बनते हैं। स्वयमेव व्यवस्थित हैं। यह आगम से भी घटित नहीं होता। हम प्रश्न करते जायेंगे आप उत्तर नहीं दे पायेंगे। '**आगमोऽतर्क गोचरा**' इसका मतलब ये है कि अकृत्रिम व्यवस्था आगमिक है और आगम में कोई तर्क नहीं चलता। ये अनादिकाल से हैं और ऐसे ही हैं और ऐसे ही रहनेवाले हैं। उनको कोई मिटा नहीं सकता और न कभी मिटेंगे, यह अखण्ड व्यवस्था है। जैसे सूर्य, चाँद को कोई मिटा नहीं सकता वैसे ही इन तालाब कमलादिकों को भी कोई बना और मिटा नहीं सकता।

इसके बाद में उपपाद जन्म के बारे में भी शंका हो जाती है। उपपाद जन्म और वैक्रयिक शरीर कैसे बन जाता है। एक अन्तर्मुहूर्त्त में वे जवान के समान कैसे खड़े हो जाते हैं। तत्त्वार्थसूत्र पढ़ाते समय जब लोगों से पूछते हैं तो जवाब नहीं मिलता। कैसे अन्तर्मुहूर्त्त में शरीर बन गया और जवान के समान खड़े हो गये? क्या, इसका उत्तर आप दे पायेंगे। नहीं तो मैं समाधान रूप में एक उत्तर दे रहा हूँ कि एक बार चिंतन आया था मेरे अन्दर कि इस जगत में एक ऐसी शक्ति निर्मित होती है जो शक्ति एक क्षण में उत्पन्न होकर किसी मकान आदिक को भी गिरा देती है, और जमीन में गढ्डा तक कर देती है, उसका नाम है वज्र। उस वज्रपात को गाज भी बोलते हैं। देखो ! एक जगह अन्तर्मुहूर्त्त में मात्र बादल और ऐसी कुछ गैसेस मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गयी कि उसने मकान को गिरा दिया है, जमीन पर गढ्ढा भी कर दिया। जब एक क्षण में या एक अन्तर्मुहूर्त्त में इतनी बड़ी शक्ति उत्पन्न हो सकती है तो क्या एक अन्तर्मुहूर्त्त में देवों का शरीर नहीं बन सकता है? अर्थात् अवश्य बन सकता है। समझ में आया? परमाणु स्कन्धादि को इकट्ठा करके इतना बड़ा ठोस स्कन्ध बन सकता है तो ऐसे ही वैक्रियिक शरीर के योग्य परमाणु मिलकर वैक्रियिक शरीर क्यों नहीं बन सकता? अवश्य बन सकता है। तैजस और आहारक शरीर और यहाँ वहाँ के पुद्‌गलों को इकट्ठा कर बनने वाले सम्मूर्छन शरीर भी ऐसे ही रचित हो जाते हैं। अविश्वास नहीं ला सकते आप। नहीं तो बताओ वह गाज कैसे बन गई? वैसे ही वह शरीर बन गया, बस यही उदाहरण है जो फिट हो जाता है फिर कोई शंका

वाली बात नहीं रहती उपपाद जन्म के विषय में।

अब हम आगे चलते हैं पाँच स्थावरों के बारे में भी चिंतन करते हैं। कई लोग सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर हैं और इनमें जीव कैसे माने? वनस्पति को तो जीव मानते ही हैं चलो, वायु भी मान लें क्योंकि उसकी विक्रिया होती है और यहाँ-वहाँ जाती भी है। जल भी उसी तरह मान लें जल भी जीव है। लेकिन पृथ्वी को जीव कैसे मान लिया? तो उसका उत्तर यह है कि वह पृथ्वी बढ़ती है, चट्टानें बढ़ती हैं, ठोस भी बन जाती है। परतदार चट्टान, आग्नेय चट्टान आदि का विषय पुस्तकों में पढ़ते ही थे। चलो तो पृथ्वी को भी जीव मान लिया गया। अब अग्नि में जीव कैसे मानना? अग्नि तो जला देती है। जीवों को भी समाप्त कर देती है। अग्नि में जीव कैसे मानेंगे? बस; इसकी सिद्धि में कुछ लोग मौन रह जाते हैं। लेकिन मैं इसकी सिद्धि आपके सामने बतलाता हूँ कि किसी भी जीव का श्वास के बिना जीवन नहीं रहता। वैसे तो प्राण दस होते हैं परन्तु एक जीव में कम से कम चार प्राण होते हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव के पास एक स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। अब देख लीजिए कम से कम चार प्राण के बिना कोई जीव नहीं रहता। आप बोलेंगे कि अग्नि के पास कहाँ श्वासोच्छ्वास है? तो मैं बताऊँ आपको; देख लीजिए एक प्रयोग है जैसे एक कुआँ है या सुरंग है जिसकी बहुत गहराई है। उसमें एक लालटेन छोड़ते हैं, एक रस्सी आदि के सहारे उसे छोड़ा जाता है। जब तक या जहाँ तक वह जलती रहेगी वहाँ तक वायु है। उसके नीचे वायु नहीं और वहाँ हमें जाना अशक्य है। ये सामान्य प्रयोग है जिसे लोग नीचे उतरने के लिए करते हैं। जहाँ तक वह दीपक जलता रहेगा वहाँ तक वायु है ऐसा अनुमान कर लेते हैं। इसका मतलब क्या हुआ कि अग्नि को भी प्राण-वायु (ऑक्सीजन) की आवश्यकता थी। अग्नि वहीं पर रह सकती है जहाँ पर वायु है। क्योंकि अग्नि को श्वास लेने के लिए वायु चाहिए। वायु नहीं तो दीपक बुझ जायेगा। सिद्ध हो गया न; कि अग्नि जीव है। अगर जीव नहीं होता तो क्यों बुझती। अर्थात् श्वास के लिए वायु चाहिए। सिद्धि हो गयी न एक साधारण-से उदाहरण से। आगम को विधिवत् सिद्ध करने से सिद्धि हो जाती है।

अतः अपने आगम को अच्छे ढंग से सिद्ध करने में प्रयत्न किया करें। अपना पुण्य ही है जो हमें ऐसे तर्कों को अपने चिन्तन में लाता है फिर कहीं पर भी शंका नहीं रह पाती है। बस; इसी के लिए यह जैनागम पर संगोष्ठी हुई है।

अब यहाँ म्लेच्छ खण्ड के सम्बंध में विचार करते हुये कहा जा रहा है कि उसे जघन्य भोगभूमि नहीं मान सकते हैं क्योंकि म्लेच्छ खण्ड में चतुर्थ काल के समान ही उत्सेध वगैरह पाया जाता है। चतुर्थकाल के शुरु के अन्त तक के समान परिवर्तन होता रहता है। वहाँ षट्कर्म व्यवस्था नहीं है, जैसे कि यहाँ असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या होती है वैसी व्यवस्था वहाँ नहीं है। इसलिए हम उसको आर्यखण्ड भी नहीं मानते हैं। कर्मभूमि होते हुये भी हमारे आर्यखण्ड जैसे कर्म वहाँ नहीं हैं। क्योंकि ज्यादा हिंसा आदि में प्रयुक्त रहते हैं वे लोग। लेकिन एक विशेष बात यह कहनी है मुझे कि वहाँ के जो मनुष्य हैं वे आर्यखण्ड में आकर के शिक्षित, प्रशिक्षित होकर व्रत, संयम भी धारण कर सकते हैं। जब जयधवला की वाचना चल रही थी (पपोराजी में) तब गुरुवर के मुख से सुना था कि चक्रवर्ती बत्तीस हजार रानियों को वहाँ से लाता है। बत्तीस हजार आर्यखण्ड सम्बंधी, बत्तीस हजार विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में रहने वाले विद्याधरों सम्बंधी और बत्तीस हजार म्लेच्छ खण्ड सम्बंधी, ऐसी छयानवें हजार रानियाँ होती हैं चक्रवर्ती की। उनको जैन धर्म के संस्कार देने के बाद विवाह रचाता है अन्यथा नहीं। अब उनके रहने की बात, अलग है कौन-से महल में रहती होगी इसकी शंका न करें। क्योंकि शंका होने के बाद समाधान नहीं मिले तो लोगों को अश्रद्धा हो जाती है। इसलिए समाधान दे रहा हूँ कि वे रानियाँ यहीं एक जगह ही आती होंगी ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन आप लोग फिर सोचेंगे कि एक जगह नहीं रहेंगी तो क्या मतलब रहा रानी बनने से? चक्रवर्ती कैसे जायेगा, रोज-रोज उनके पास? किन्तु यह ध्यान रखना कि चक्रवर्ती के पास एक विशेषता रहती है कि वह विक्रिया शक्ति वाला होता है। वह छयानवे हजार रूप बना लेता है और प्रत्येक रानी के पास जाकर उन्हें संतुष्ट करता है मूल रूप तो पट्टरानी के पास रहता है। इसलिए इनमें शंका करने की बात नहीं, आपको अश्रद्धा न हो इसलिए मैंने कहा है और जब छयानवे हजार

रूप बना लेता है; सबके पास पहुँच जाता है तब सबको लगता है कि मेरे सामने ही चक्रवर्ती खड़ा है। म्लेच्छ खण्ड के जो मनुष्य हैं वे यहाँ आकर के जैन बनकर संयम भी धारण कर सकते हैं और संयम धारण करते ही उनकी विशुद्धि यहाँ के संयमियों से भी ज्यादा होती है भले ही दूसरे समय में विशुद्धि यहाँ के मनुष्यों से भी कम हो जाती है। यह प्रकरण भी गुरुवर के मुख से ही सुना था। अच्छा! एक बात और कहूँ कि जो विजयार्ध की श्रेणियाँ हैं उन श्रेणियों से आज भी मोक्ष हो रहा है। क्योंकि वहाँ आर्यखण्ड है, भरतक्षेत्र है। विजयार्ध पर्वत या उनकी श्रेणियों में चतुर्थ काल जैसा वातावरण है, आज भी वहाँ मुनि बन रहे हैं। कई विद्याधर तो विदेह क्षेत्र जाकर दीक्षा लेकर फिर विद्याओं का प्रयोग न करते हुये क्योंकि विद्यायें परिग्रह है; चारण ऋद्धि प्राप्त करके वहाँ से विजयार्ध पर्वत आते होंगे और लोगों को दीक्षा देते होंगे, कारण कि वहाँ पर उत्तम संहनन भी होने से आज भी मोक्ष जाने में कोई बाधा नहीं। वहाँ विद्यायें प्राप्त होती हैं। यहाँ पर तो जब रावण, हनुमान, जैसे विद्याधर रहते थे और यहाँ से हनुमान आदि मोक्ष भी गये लेकिन आज यहाँ पर आयु वगैरह कम हो गयी और पुण्य भी कम हो गया, इसलिए वे यहाँ पर नहीं आते। साक्षात् रूप से नहीं आते पर कभी-कभी निकलते होंगे जैसे उड़नतस्तरी के बारे में कहा था मैंने कि- उड़नतस्तरी क्या है? कोई देव का विमान है या विद्याधर का विमान हो सकता है। ऐसे तो कई विज्ञानियों ने खोज की है। उड़नतस्तरी को देखा है जो कोई विमान सदृश है, बहुत तेज भागता है वह। उन्होंने उसके पीछे अपनी शक्तियों को छोड़ा लेकिन नहीं पकड़ पाये उसको। पकड़ने में अपनी शक्तियाँ नष्ट हो गयी। क्या चीज है वह? एक बार और चर्चा हुयी थी विज्ञान में विशेष रूचि रखने वालों से, तो उन्होंने कहा था कि विज्ञानी लोगों ने उत्तर दिया है कि वह विशेष विमान है, विशेष शक्तियाँ हैं उनके पास, विशेष जगह पर रहते हैं वे, हम वहाँ पर अभी तक नहीं पहुँच सके। उसको खोजने में कई वर्ष लग जायेंगे। अभी तक समर्थ नहीं हैं उसको समझने में। इसका मतलब वे कौन होंगे? मैं समझता हूँ कि स्वर्ग के विमान तो आते नहीं है पंचम काल में, हो सकता है कि वह भवनत्रिक के देवों के विमान हों अथवा किन्हीं विद्याधरों के विमान हो

सकते हैं क्योंकि उनके पास विशेष शक्तियाँ भी हैं। अभी वे पंचमकाल में दिखते नहीं है। और अतिनिकट जाने पर आपके विमान को नष्ट भी कर सकती हैं उनकी शक्तियाँ। इसलिए लगता है कि विज्ञानी बहुत पीछे हैं अभी। इन सब चीजों के बारे में अनभिज्ञता है उन्हें, अत: हमारे विद्याधरों एवं देवों के विमानों को वे नहीं जान पा रहे हैं, न उनकी पूर्ण खोज कर पा रहे हैं। पहले वैज्ञानिक लोग एक सूर्य, एक चाँद मानते थे फिर दो सूर्य, दो चाँद मानने लगेंगे और धीरे-धीरे वे हमारी ओर आते ही जा रहे हैं। पहले वे जिसको परमाणु कहते थे अब उस परमाणु के भी भेद कर दिये हैं फिर पहले वाला तो परमाणु स्कन्ध ठहरा न! पहले कह रहे थे कि एक बूँद पानी में 36,450 जीव होते हैं फिर आज इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप आ गया है उससे बता दिया है कि एक बूँद पानी में लगभग पाँच लाख (5,00,000)जीव हैं। इसका मतलब अभी का निर्णय, वास्तविक निर्णय नहीं है आगे और भी सूक्ष्मता पर पहुँचेंगे किन्तु हमारे जैनदर्शन में तो कहा है कि एक बूँद पानी में असंख्यात जीव होते हैं। और परमाणु वह है जो आँखों से नहीं दिख सकता; चाक्षुष नहीं है वह।

वैसे तो हम परमाणु के विषय में पढ़ सकते हैं, ज्ञान भी कर सकते हैं लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान से ही देख सकते हैं उसे। अवधिज्ञान से भी जाना जा सकता है, ऐसा मेरा एक चिंतन है। कौन सम्यग्दृष्टि? कौन मिथ्यादृष्टि? इसको कौन-सा ज्ञान जान सका है? केवलज्ञान तो जानता ही है चलो, मन: पर्याय ज्ञान भी जान जाये। मन सम्बंधी सब कुछ जान जाये। लेकिन मेरा एक चिंतन ऐसा है जिसे सुनिये कि परमाणु को अवधिज्ञान भी जान सकता है क्योंकि परमाणु रूपी है और वह परमाणु भी स्कन्ध बन जाता है जैसे कुछ परमाणु कर्म रूप स्कन्ध बन जाते हैं तब यह व्यक्ति सम्यगदृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है इस आत्मा में कौन-सी वर्गणाओं का बन्ध हुआ है इसका निर्णय कर सम्यक्त्व, मिथ्यात्व रूप कर्मों का ज्ञान कर लेना यह अवधिज्ञान का विषय हो जाता है। अवधिज्ञान भी विभिन्न प्रकार का होता है, ऐसे देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। सभी प्रकार के अवधिज्ञान उसे जानते हैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ। लेकिन कोई अवधिज्ञानी अवश्य जान सकते हैं यह उस ज्ञान की विशेषता है। ऐसी चर्चाओं के माध्यम से

ऐसे ही अच्छे-अच्छे नवनीत के समान विषय खुलते हैं। अत: मेरी भावना यह है कि ऐसी संगोष्ठियों के जो विषय हैं वे पूरे भारत में एक नये दिशा बोध को दे सकें और जिससे आज के अनभिज्ञ लोग इन विषयों से भोग भूमि, कर्म भूमि क्या है? ज्योतिष मण्डल आदि क्या है? इसे जान सकें। नवग्रह सरागी देवी, देवता हैं उनके आदर के लिए ज्योतिष का विषय नहीं रखा गया है। लेकिन वहाँ की व्यवस्था क्या है? जो कि आज का विज्ञान सीमित ही जानता है और उसकी सूक्ष्मता को तो जानता नहीं, परंतु इस विषय पर चिन्तनकर वे लोग सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकें। ऐसा सैद्धांतिक नवनीत सारे भारत को और विश्व को मिलना चाहिए। इसलिए यहाँ की समाज ने एक संकल्प किया है कि इन संदर्भों की हम एक पुस्तक बनायेंगे। अच्छा है बहुत ही अच्छा है जिससे समूचे भारत में जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हो यही मेरी भी भावना है:-

विश्वास से ही मिलता है, जीवन को सहारा।
विश्वास पर ही तो टिकता है, ये परलोक सारा॥
देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धान अगर सच्चा है तो-
सच्चे पथ से ही मिलता है भवसिन्धु का किनारा॥

- महावीर भगवान की जय -

6- भव-मुक्ति का उपाय

मङ्गलाचरण

जिसने रागद्वेषकामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥

लोक सम्बंधी एक विशेष चिन्तवन को सभी जिनधर्मी पढ़ते हैं और सभी सम्प्रदाय के लिए भी अनुकरणीय और इष्ट होता है। इस जगत में हरेक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है; जैसे कि एक बीज के अन्दर वृक्ष बनने की शक्ति होती है। हरेक आत्मा परमात्मा बन सकती है लेकिन वह भव्य होना चाहिए। जैसे कि स्वर्ण पाषाण जमीन से निकलता है और उससे स्वर्ण निकलता है लेकिन एक और ऐसा भी पाषाण होता है जिसको हम अन्धपाषाण बोलते हैं उससे स्वर्ण कदापि नहीं निकलता है। उसके अन्दर उपादान इतना सशक्त नहीं होता कि अपने अन्दर से वह शक्ति व्यक्त कर सके। कहते हैं कि मयूर के पंख में स्वर्ण होता है लेकिन उसको कोई बाहर नहीं निकाल सकता और किसी भी प्रक्रिया से वह बाहर नहीं निकाला जा सकता। ऐसे कुछ दूरानदूर भव्यजीव इस जगत में हैं वे भले ही मोक्ष पाने की शक्ति रखते हों लेकिन कभी उसका व्यक्तिकरण नहीं होता। कहीं शक्ति हो तो भी व्यक्तिकरण के लिए वैसे निमित्त चाहिए और वैसे निमित्त मिलने पर भी अगर उपादान सशक्त नहीं है तो वहाँ कार्य नहीं हो पाता।

जहाँ उपादान सशक्त होता है तो कई बार अपने आप भी निमित्त मिलने लग जाते हैं। हम इस जगत में हरेक आत्मा को परमात्मा की शक्ति से देख सकते हैं। लेकिन शक्ति से ही देख सकते हैं वहाँ व्यक्ति वर्तमान में हुई नहीं। हम बीज में वृक्ष की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन वर्तमान में बीज को हम वृक्ष नहीं बोल सकते। हम कह सकते हैं कि शक्ति की अपेक्षा से उसमें वृक्ष और फल सब कुछ छुपे हुये हैं। दुग्ध में घी की भी शक्ति है। वह शक्ति कब बाहर आती है? जब उसके साथ वैसे निमित्त मिलते हैं और उस प्रकार की प्रक्रिया की जाती है तब

घी रूप में उसकी व्यक्ति होती है तब एक अलग ही स्वाद मिलता है। योग्यता आवश्यक होती है प्रत्येक कार्य के लिए। जैसे कि आप बीज को भूमि में डालोगे तो भूमि कितनी साफ सुथरी होना चाहिए? कंकड़ पत्थर से रहित होना चाहिए, मृदु होना चाहिए और उसमें पानी डालोगे, खाद डालोगे और रक्षा करोगे तो फिर वह बीज अंकुरित होगा और धीरे-धीरे वह वृक्ष रूप लेकर के हमें फल भी देगा। इसी तरह से जैसे कि घी को भी पाने के लिए दूध को तपाना पड़ता है और नवनीत को भी तपाना पड़ता है तब वहाँ घी बनता है। घी की शक्ति युक्त दूध को पीकर मात्र घी का स्वाद नहीं ले सकते। ऐसे ही वर्तमान में हम इस आत्मा में परमात्मा की शक्ति तो बोल सकते हैं परंतु व्यक्तिकरण नहीं हैं अत: उसका स्वादादि लेकर अनुभव हम नहीं कर सकते।

यह बात भी हमें अच्छी तरह से समझना चाहिए कि अभी हम इस संसार में रहते हैं तो इस संसार में इन जीवों की स्थिति क्या है? जैसे जीव दो प्रकार के हैं संसारी और मुक्त। हम लोग संसारी जीव हैं। चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारों गतियों में अनादि काल से भ्रमण चल रहा है। चौरासी लाख प्रकार के योनि स्थान जीवों के जन्म लेने का स्थान है इनमें जीव जन्म-मरण कर रहे हैं अनादिकाल से। 'संसरतीति संसार:' संसरतीति मतलब चतुर्गति भ्रमण; जिसका अर्थ संसार होता है। हम संसार से पार हो सकते हैं कैसे हो सकते हैं? बताइए कि बीज से वृक्ष बनता है या वृक्ष से बीज? बीज पहले है कि वृक्ष पहले है? आप बोलेंगे बीज पहले है तो बीज कहाँ से आया? वृक्ष कहां से आया? कौन पहले आया? कौन बाद में आया? कोई नहीं बता सकता। ऐसे ही अनादिकाल से यह आत्मा इस संसार में है, कर्मों से सहित है, कभी मुक्त थी बाद में संसारी बन गयी ऐसा नहीं है। अनादिकाल से कर्मों का संयोग लगा हुआ है। एक बात निश्चित है कि इस भव्य आत्मा को परमात्मा पद मिल सकता है जैसे हमें बीज से वृक्ष नहीं चाहिए तो क्या करना पड़ेगा? अगर बीज को जला दोगे तो वृक्ष नहीं बनेगा। ऐसे ही इस संसार में उत्पत्ति का कारण है कर्म। हमारी आत्मा में जो अष्ट कर्मों का बन्ध है उसे कार्मण शरीर बोलते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय

इन अष्ट कर्मों के बन्ध से आत्मा अनादिकाल से इस संसार में भ्रमण कर रही है। कर्मों का बन्ध होता है। कर्मों से गति होती है। गति में शरीर मिलता है। शरीर में इन्द्रियाँ मिलती हैं। इन्द्रियों को विषय भोग मिलते हैं। विषय भोग में रागद्वेष होता है। राग-द्वेष से कर्म बंध होता है और कर्मों से पुनः गति आदि ऐसे यह चक्र अनादि काल से चल रहा है। इससे निकलने का क्या उपाय है ? ये हमें सोचना चाहिए। कर्म रूप बीज को जिसने जला दिया तो वह इस संसार में जन्म, मरण नहीं करता। इस लोक में संसारी आत्माओं में वे भी आते हैं जो जीवन मुक्त हैं हमारे केवली भगवान आठ कर्मों में से चार घातियाँ कर्मों का नाश करके वे केवली भगवान बन जाते, प्रत्यक्ष ज्ञानी बन जाते हैं और समवसरण या गंधकुटी की रचना होती है। उनका इस जीवन में नियम से मोक्ष होगा। अब वे इस संसार में जन्म नहीं लेंगे इसलिए उनको जीवन मुक्त कहा जाता है और जो आठों कर्म से दूर हो जाते हैं वे कर्म मुक्त कहलाते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी बन सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जाते हैं फिर इस संसार में नहीं आते हैं। जैसे एक बार दूध से घी बनने के बाद क्या कभी वह घी दूध बनता है? नहीं बनता। वैसे ही एक बार आत्मा मोक्ष जाने के बाद पुनः इस संसार में अवतरित नहीं होती। जब तक ये आत्मा चार गतियों में कभी नरक, कभी देव, कभी मनुष्य, कभी तिर्यञ्च ऐसी गतियों में घूमती रहती है तब तक संसार चलता रहता है और जब इन चारों गतियों से निकल जाती है तो फिर पुनः इस संसार में नहीं आती।

संसार निवारण हेतु स्वस्तिक का विवेचन बड़ा मार्मिक है। एक जगह बहुत अच्छा विवेचन देखा था स्वस्तिक का। जैसे हमने 卐 बनाया तो उसमें खड़ा डण्डा जन्म का प्रतीक है। आड़ा डण्डा मरण का प्रतीक है। चारों तरफ चार डण्डे चार गतियों के प्रतीक हैं। जन्म, मरण चलता है और चारों गतियों में भ्रमण चलता रहता है। उसमें चार शून्य रखे हुये हैं उनमें तीन, चौबीस, पाँच और चार ऐसे अंक खिलते हैं ये किसके प्रतीक हैं? रत्नत्रय का पालन करना, चौबीस तीर्थंकरों को मानना, पाँच परमेष्ठियों पर श्रद्धा करना और चारण ऋद्धिधारी मुनियों का ध्यान करना। ऐसा धर्म का जो हमारे भगवान ने उपदेश दिया है उसके अनुसार चलकर जन्म, मरण के चक्कर से दूर होकर यह आत्मा

कहाँ जाती है? अब आप ने जो स्वस्तिक बनाया है उसमें चारों कोणों में थोड़ी तिरछी रेखाएँ भी बनायी हुयीं हैं। जिसका अर्थ यह होता है कि जब यह आत्मा धर्म का पालन करती है तब इस संसार से निकल जाती है और मोक्ष को प्राप्त हो जाती है। अच्छा लगा न! कितना अच्छा चिंतन किया है स्वस्तिक के सम्बंध में। धन्य-धन्य वे भव्यात्म लोग जो इस संसार में रहते हुये भी ध्यान आदि के द्वारा कर्मों का क्षय कर देते हैं और आत्मा भव से मुक्त हो जाती है। कर्मों से मोक्ष पाने के लिए सबसे प्रमुख ध्यान है और वह ध्यान कैसे होता है? तो जब तक हमारा परवस्तु से सम्बंध रहता है तब तक एकाग्रता नहीं आती जैसे कि एक छोटी-सी वस्तु लंगोट है वह फट गयी तो सुई चाहिए, सुई को धागा चाहिए, सुई, धागा रखने के लिए डब्बी चाहिए, डब्बी के लिए पेटी चाहिए पेटी रखने के लिए घर चाहिए और घर में लगाने के लिए ताला चाहिए। ताले टूटे तो केस डालेंगे। फिर केस में लड़ने के लिए पैसे चाहिए और पैसे के लिए दुकान चाहिए सब कुछ चाहिए। इसलिए छोटे से परिग्रह से भी बहुत बड़ा परिग्रह आ जाता है और चिंताओं पर चिंतायें बढ़ती जाती हैं। चिंतायें बहुत रहती हैं। प्रवचन चलते हुए भी बार-बार बाहर भागना पड़ता है आपको; क्योंकि मोबाइल से सम्बंध जोड़ रखा है और अगर मोबाइल में सिम न हो या नेटवर्क से सम्बंध जुड़ा न हो तो क्या घंटी आयेगी? नहीं आयेगी, घंटी नहीं बजेगी तो आपको यहाँ-वहाँ दौड़ना नहीं पड़ेगा, लाल स्विच दबा दिया आपने तो बन्द हो गयी घंटी, अब कोई सम्बंध नहीं। सम्बंध रखते हैं तो हमें आकुलता होती है। मन वहाँ भाग जाता है। सभा में बैठे हुये भी तुम्हारा मन दुकान तरफ चला गया। दुकान से फोन आ गया, घर से फोन आ गया तो तुम्हारा मन भटक जाता है। हमारे भगवान ने क्या किया था? मुनि बनकर सब सम्बंध तोड़ दिया था जब सम्बंध तोड़ दिया तो मन एकाग्र हुआ। अपनी आत्मा में ही तल्लीन हो गये और कर्मों का क्षय हो गया। एक और बात आप सोचेंगें कि क्या ऐसे ही कर्मों क्षय हो गया? देखो एक छोटा-सा उदाहरण है-

सूर्य की किरणें सब जगह पड़ रही हैं और बहुत तेज गर्मी का समय है समझो; लेकिन वे किरणें एक पेपर को भी नहीं जला पा रही हैं पेपर धूप में पड़े

रहते हैं जलते नहीं और उन ही किरणों को एक लेन्स के द्वारा इकट्ठा करके एक प्वाइन्ट पर छोड़ते हैं तो पेपर जल उठता है। यहाँ पर छोटे-से उदाहरण से पूरा रहस्य खुल गया, मतलब कि हमारी ध्यान रूपी किरणें अगर विश्व के समस्त विषयों की ओर फैल रही हैं और बाहरी जगत से सम्बंध जुड़ा है तो हम आत्मा में एकाग्र नहीं हो पाते। जैसे लेन्स के द्वारा सारी किरणों को एक प्वाइन्ट पर छोड़ा गया वैसे ही हम अगर सभी ओर से ध्यान को हटा करके उसे एक जगह केन्द्रित करके अपनी आत्मा पर छोड़ेंगे तो कर्म रूपी पेपर जल उठेगा और आठों कर्म नष्ट होकर के आत्मा मुक्त हो जायेगी, परमात्मा बन जायेगी। बस! उसी साधना के लिए मुनि बनना पड़ता है। अब हम दूसरी तरफ से विचार करेंगे कि मुनियों ने कपड़ा क्यों छोड़ा? कपड़ा रहेगा तो चिंतायें रहेंगी; धोने की, पानी की, सुखाने की, प्रेस करने की, और सम्हालने की भी चिंता रहेगी इसलिए तो साधु उस परिग्रह को छोड़ देते हैं। घर, मकान भी छोड़ देते हैं और प्राकृतिक सहज जीवन जीते हैं क्योंकि ऐसा ही तो जन्म हुआ है, कोई कपड़ा तो पहनकर आया नहीं और वे एक यथाजात बालक के समान रहते हैं। उनके अन्दर कोई विकार नहीं होता क्योंकि निर्ग्रन्थ भेष विकार से रहित होता है। उनका जीवन निर्मल जीवन माना जाता है। और इससे वे कर्मों का क्षय करते हैं, पंच पाप नहीं हो पाते हैं। हिंसा से दूर हो गये, कृषि व्यापार आदि सब परिग्रहों से दूर हो गये तो हिंसा नहीं। न स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाते हैं, और न किसी को भोजन बनाने के लिए बोलते हैं। वे तो आहार चर्या के निमित्त कोई नियम लेकर के निकलते हैं, विधि मिल गयी तो आहार हो जाता है। उन श्रावकों ने अगर नवधा पूर्वक कहा कि आहार जल शुद्ध है तो आहार लेते हैं नहीं तो वापिस आ जाते हैं। आपने मुझे यह नहीं दिया वह नहीं दिया, ऐसा नहीं दिया, वैसा नहीं दिया ऐसा कुछ नहीं बोलते हैं। शास्त्र पढ़ना हो तो वह उन्हें मंदिर में मिल जाता है। पिच्छिका और कमण्डल बदलना हो तो आप लोग दे ही देते हैं, उन्हें और क्या चाहिए बस सभी स्त्रियाँ तो उनके लिए माता के समान या बहिन के समान हो गयीं। जिसके लिए लोग झूठ बोलते हैं और चोरी करते हैं उस परिग्रह को तो पहले ही छोड़ दिया। मात्र उपकरण हैं साथ में। पिच्छिका है, कमण्डल और

शास्त्र हैं और आँखें कमजोर हो तो चश्मा है। वह भी शास्त्र पढ़ने या समिति पूर्वक चलने के लिए है इसलिए उपकरण में आ जायेगा। 'उपकारं करोतीति उपकरणं'। जो उपकार करता है वह उपकरण है। इसका मतलब यह नहीं है कि धन, पैसा भी रख लें। उसके लिए तो अनेक चिंतायें भी बढ़ जाती हैं। इसी तरह हिंसा के भी कोई साधन नहीं रखते हैं कि मोबाईल रख लें, मोबाइल में भी हिंसा है क्योंकि लाइट (अग्नि) का सम्बंध है अग्नि को भी जीव माना है। उसके अन्दर आपको लाइट चार्ज करनी पड़ती है। सेल है या बैट्री यह जो चीज है इसमें भी सूक्ष्मता से हिंसा है। उसके लिए कितना धन वैभव का झमेला होता है। उस मोबाइल में सिम डालना पड़ती है और क्या-क्या करना पड़ता है क्यों भैया? क्या कहते हैं उसको? हाँ बेलेन्स डालना पड़ता है। आप पैसे रखते हैं अतः बेलेन्स डालते रहते हैं लेकिन साधु किससे याचना करेंगे। फिर परिग्रह आ जाय और वही पैसे वाली बात भी आ जायेगी। इसलिए मोबाइल नहीं रखते। साधु के पास मोटर नहीं, गाड़ी नहीं, कुछ संसार वस्तु नहीं होती क्योंकि उससे हिंसा होती है। जब कभी गाड़ी जायेगी तो जीव जन्तुओं के ऊपर से चढ़ती जायेगी और अगर हम पैदल चलेंगे तो देखकर चलेंगे चार हाथ भूमि देखकर चलेंगे। गाड़ी चलेगी तो रफ्तार से चलेगी वह किसको देखकर चलेगी? इसलिए गाड़ी मोटर भी अपने साथ में नहीं रखते। इस प्रकार का जीवन होता है उनका और एक जगह के बन्धन में भी नहीं रहते वे। कारण कि एक जगह रहने लगेंगे तो मोह हो जायेगा। राग, द्वेष होने लगेंगे। इसलिए हमेशा विहार करते रहते हैं। बोलते हैं कि साधुओं के पैर चलते हैं और मन अपने धर्म में स्थिर रहता है, लेकिन श्रावकों के क्या होता है? पैर स्थिर रहते हैं और मन चंचल होता है। वे एक घर में बंधे रहते हैं, लेकिन मन सब जगह घूमता है। लेकिन साधुओं के पैर चलते हैं, समूचे भारत में वे विहार करते रहते हैं लेकिन मन अपनी आत्मा में स्थिर रहता है जहाँ पर भी जाय, वहाँ पर भी है धर्म ध्यान करते हैं बस। अपने आप से मतलब है, अपने आवश्यकों से मतलब है। यही उनका जीवन है। यह तो संक्षेप से उपदेश हुआ, लेकिन अब जो यहाँ शंकायें उठायी गई हैं उसका भी समाधान करना आवश्यक है। भोग भूमि में जितने भी जीव हैं वे सब देव गति

को प्राप्त होते हैं। ये विशेषता बहुत अच्छी विशेषता है। लेकिन वे देवगति को ही क्यों प्राप्त करते हैं? इस पर थोड़ा सा चिंतन करें। तत्त्वार्थ सूत्र के छठे अध्याय के उन्नीसवे सूत्र में कहा है कि **'निःशीलव्रतत्त्वं च सर्वेषाम्'** अर्थात् व्रत और शील से रहितपना देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक इन चारों आयु का कारण है। यहाँ एक शंका जन्म लेती है कि व्रत और शील से रहितपना देवायु के आस्रव का कारण कैसे हो सकता है? तो इसका समाधान इस प्रकार है कि भोग भूमि में कोई व्रत-शील नहीं होता तो भी वे शान्त परिणामी होते हुये देव अवस्था को ही प्राप्त होते हैं यह आगम में नियम है अतः भोगभूमि की अपेक्षा से व्रत, शील से रहितपना देवायु का कारण माना है।

भोगभूमि के सम्बंध में किसी भव्य को ऐसा भी प्रश्न उठ सकता है कि भोग भूमि के जीव देवगति के अलावा अन्य गतियों में क्यों नहीं जाते? इस प्रश्न का समाधान यह है कि उन्हें पूर्व संचित विशिष्ठ पुण्य का फल ऐसा ही मिलता है। इसके अलावा जिस परिग्रह के पीछे कर्मभूमि का व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और मूर्छा करता ऐसा परिग्रह उन भोगभूमि के जीवों के लिए दस तरह के कल्पवृक्षों से सुलभ, सहज रूप से समयानुसार प्राप्त हो जाता है जिस कारण दुःखदायी निम्न गतियों को प्राप्त कराने वाले पापों को करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

आज यहाँ पर कर्म-भूमियाँ, भोग-भूमियाँ, षट्काल परिवर्तन के सम्बंध में कुछ दिनों से जो विषय चल रहे हैं उसका नवनीत रूप में हमने जाना है कि कितनी कर्म भूमियाँ होती हैं, कितनी भोग भूमियाँ होती हैं, उनमें रहने वाले जीव किस प्रकार के होते हैं और वहाँ के किस प्रकार के दुःख, किस प्रकार के सुख, किस प्रकार के कर्म और किस प्रकार की वहाँ की व्यवस्थाएँ हैं वहाँ की। आयु आदिक के परिवर्तन होने, न होने के सम्बंध में, धर्म-कर्म की जो अवस्था-व्यवस्थाएं हैं, साथ-साथ में ज्योतिष्क मण्डल व्यवस्था जो कि इस भूमि से 790 योजन से शुरू होकर के 110 योजन के भीतर है। वे ज्योतिष्क ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर से ही सुमेरू पर्वत की प्रतिक्षणा देते हैं। यह प्रदक्षिणा देने का जो कार्य है वह इस ढाई द्वीप के अन्दर ही है।

'बहिरवस्थिताः' बोला है तत्त्वार्थ सूत्र में अर्थात् ढाई द्वीप से बाहर में सारे के सारे ज्योतिष्क मण्डल अवस्थित हैं। बहुत हैं बहुत बड़ी संख्या में हैं। हम एक चिंतन करते हैं इनका ढाई द्वीप के अन्दर ही भ्रमण क्यों है; इससे बाहर क्यों नहीं? जिससे हमें मालूम पड़ता है कि हमारा कितना विशेष पुण्य है, विशेष पुण्यशाली ही इस ढाई द्वीप में जन्म लेते हैं और जो मनुष्य बनते हैं वे तो और भी बड़े पुण्यशाली हैं देखो जहाँ हम सबके लिए अपने धार्मिक कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिए निमित्त बनते हैं ये ज्योतिष्क विमान। इसलिए तो तत्त्वार्थ सूत्र में एक सूत्र हैं 'तत्कृतः काल विभागः' अर्थात् उन ज्योतिष्क विमानों के द्वारा काल का विभाग किया गया है। आप जो घड़ी, घण्टा, प्रहर बोलते हैं और इसके साथ में दिन, रात, पक्ष, अयन, वर्ष इत्यादि बोलते हैं ये सब इन सूर्य, चाँद आदि के द्वारा किये गये काल विभाग हैं। ये व्यवहार काल हैं। इस काल के द्वारा हम धर्म, कर्म की व्यवस्था में सजग होते हैं। सूर्य का उदय होता है वह हमें कर्त्तव्यशीलता सिखाता है। वह अपनी अनवरत गति से गतिमान है। हम भी गतिमान रहते हैं जीवन भर अपने कर्त्तव्य में। हमेशा सजग रहते हैं कि सुबह से उठना सिखा रहा है सूर्य, उठिये सूर्य उदय हुआ अपने कर्त्तव्यों में लग जाइये। आज का जमाना बदल रहा है। लोग सुबह उठने में आलस्य करते हैं आठ, नौ बजे तक उठते हैं और रात में बारह, एक बजे तक जगते रहते हैं। हम उनसे कहते हैं भैय्या! निशाचर जैसे कार्य करना अच्छा नहीं है; कारण कि हम जो वास्तविक प्रकाश है उसमें तो सोते हैं और जो वास्तविक प्रकाश नहीं है उसमें जगते रहते हैं। लाईट में कितनी हिंसा है, उसे बनाते समय भी हिंसा है। जब लाईट बनती है पानी से तब आप देखे तो वहाँ पंखी घूमती है कितने मेंढक, कितनी मछलियाँ मर जाती हैं ऐसे ही जलकायिक जीव भी मरते हैं, इस तरह से लाईट तैयार होती है और जब लाईट जलाते हैं तब भी कितने जीव आते हैं, पैरों के नीचे दब कर मर जाते हैं। पहले के जमाने में तो लाईट नहीं थी। अभी कुछ शताब्दियों से ही लाईट प्रचलन में आयी है। पहले क्या करते थे लोग? पहले तो रत्नों के प्रकाश में रहते थे। चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि और भी कई प्रकार के साधन थे। आप जानते हैं कोहीनूर नाम का हीरा था। कितना प्रकाशित रहता था। आज नहीं है वह

हमारे देश में। कहीं चला गया, कहते हैं कि इंग्लैण्ड चला गया। ऐसे रत्नों से लोगों को प्रकाश मिलता था। और ऐसा रत्न किसके पास रहता था बड़े-बड़े सम्पन्न लोगों के पास रहता था। बाकी लोगों के पास तो नहीं था तो वे क्या करते होंगे? दीपक से काम चलाते होंगे और वे लोग दिन में ही सब काम कर लेते थे मतलब रात्रि होने के पहले ही सब काम करके रात्रि होने के बाद विश्राम करना ही प्रमुख रहता था। थोड़ा बहुत धर्म ध्यान करके सामायिक, ध्यान, स्तोत्रों का पाठ, जाप वगैरह करके 9, 10 बजे आराम करते थे और सुबह 4 बजे उठ जाते थे। 6 घण्टे की निद्रा पर्याप्त है। विज्ञान के अनुसार भी 6 घंटे की निद्रा पर्याप्त है 6 घण्टे से ज्यादा कोई आवश्यक नहीं है; नहीं तो अपना आवश्यक समय ही चला जाता है। बच्चों के लिए ज्यादा से ज्यादा 8 घंटे, आपके लिए 6 घण्टे निद्रा बहुत होती है। आप दस बजे सो जायेंगे तो नियम से 4 बजे नींद खुल जायेगी, आप जबरदस्ती ओढ़कर फिर सो जोओगे तो यह प्रमाद है। काम-धाम नहीं तो सोओगे ही; लेकिन नींद जब खुल जाती है तो ध्यानादि कर सकते हैं इस प्रकार का सिस्टम बनना चाहिए। आजकल तो बहुत देर तक जगते हैं और बहुत देर तक सोते हैं। ट्यूबलाईट में जागते हैं और सनलाईट में सोते हैं। अपने सिस्टम को हमने बिगाड़ लिया है। सूर्य, चाँद हमें दिनचर्या सिखाते हैं। हमारे उपकार के लिए निकलते हैं। पाँच मेरू द्वीपों में सूर्य, चाँद की प्रदक्षिणा से दिन-रात का विभाग होता है। हम लोग इसमें संयम पालन करते हैं। सूर्य किरणें अपना प्रभाव डालती हैं जिस वजह से कुछ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। रात्रि में भोजन करने वालों को बहुत चिंतनीय विषय है कितना साइन्टिफिक है हमारा जैन धर्म, इसे हम जाने अत: आज के लोगों को एवं विज्ञान पढ़ने वालों के लिए ऐसे प्रवचनों की नितांत आवश्यकता है जिस मार्ग से उनको शीघ्र हम मोड़ सकते हैं धर्म की ओर।

बड़े-बड़े लोग शास्त्र-ज्ञान के अभाव में ये भोग भूमियाँ, कर्म भूमियाँ क्या हैं नहीं जानते। इनका वर्णन भी आज के लोगों के बीच में लुप्त जैसा हो गया। कहो तो हंसी आती है लोगों को; अभी इस आगम संगोष्ठी में लोगों को बहुत कुछ नया विषय मिला। बहुत आस्था के साथ कर्म भूमि, भोग भूमि का

वर्णन आप सभी ने सुना, षट्काल परिवर्तन सुना, ज्योतिष्क विमान के सम्बंध में सुना और उनके द्वारा काल का विभाग होता है ये भी हमने समझा। इसके साथ में हमें यह भी कहना है कि यह ज्योतिष्क मण्डल मध्यलोक में ही है, ये नीचे दिखते जरूर नहीं हैं लेकिन मध्य लोक में जो 1 लाख 40 योजन का जो सुमेरु पर्वत है वहाँ तक मध्यलोक चलता है और ये ज्योतिष्क विमान तो ऊर्ध्वलोक में न होकर इस मध्यलोक में ही है और ये जो देव विमान हैं सो ज्योतिष्क कहलाते हुये भवनत्रिक में आते हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क इन तीनों को भवनत्रिक कहते हैं। इनमें मिथ्यात्व के साथ जन्म लेते हैं देव लोग, कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता है। हाँ, जन्म लेने के बाद सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं वे। लेकिन सभी बन जायें ऐसा नियम नहीं है। वहाँ पर अनेक अकृत्रिम जिनालय भी हैं। अधोलोक में भी ऐसे जिनालय हैं और यहाँ मध्यलोक जैसे ही वे अकृत्रिम जिनालय हैं। जिनालायों में सब जगह जो जिन प्रतिमायें हैं उनकी पूजा देवगण किया करते हैं। जो मिथ्यादृष्टि देव हैं वे कुल देवता समझकर पूजा करते हैं और सम्यग्दृष्टि देव हैं वे बहुत भक्ति भाव से नि:कांक्षित भावना से पूजा करते हैं इस प्रकार का अन्तर है।

हमें विशेष और समझना है कि आज जो ग्रहों के बारे में हमने बहुत कुछ सुना है कि विज्ञान क्या कहता है, और जैन धर्म में या जैन दर्शन में क्या है, कहाँ कौन-से ग्रह हैं, कितनी दूरी पर है, कौन घूमता है, और वहाँ स्थिर रहता है? ये सब बातें हमने जान ली हैं। आज विशेष विषय दिया गया था नवग्रह के बारे में। चिंतन करें कि जिनका विषय था उन्होंने यह कहा कि 'भय का भूत' है आज वास्तव में यही हुआ है आज के मानव को। भय का भूत हो गया है लोगों को। लोगों को भूत-सा लग गया है क्योंकि नवग्रह के चक्कर में वे जाते हैं, हाथ दिखवाते हैं, अनेक प्रकार के रत्न, मालायें पहनाते रहते हैं। मुझे समझ में नहीं आता, हमारे यहाँ जो कर्म सिद्धान्त है हम उसको क्यों भूल गये हैं। नवग्रह से भी बड़े-बड़े देव हैं ऊपर; जिनका प्रभाव सबसे ज्यादा है। कहा गया है कि उनके पास शापानुग्रह शक्ति सबसे ज्यादा पायी जाती है। आप पढ़ते ही हैं तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में आया है कि ऊपर-ऊपर के देवों में क्या-क्या विशेषताएँ हैं? ऊपर-

ऊपर उनकी प्रभाव शक्ति, शरीर में कान्ति, आभरणों की कान्ति, अवधिज्ञान का विषय इत्यादि ज्यादा-ज्यादा हैं। ऊपर ज्यादा-ज्यादा है तो भी उनको महत्व न देकर इन नवग्रहों को महत्व ज्यादा क्यों दे रहे हैं यहाँ के लोग? वे नवग्रह सुमेरु पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं और अपना सौभाग्य समझते हैं क्योंकि वहाँ पर जिनालय हैं, उनमें 500-500 धनुष की ऊँची जिन प्रतिमायें हैं उनकी परिक्रमा लगाकर देवगण अपना सौभाग्य समझते हैं। लेकिन मूढ़ लोग उन देवों की परिक्रमा लगाते हैं। अरे! अनादि काल से यह आत्मा मिथ्यात्व भी करती रही है तो तीर्थंकर कथित सम्यक्त्व भी अनादि काल से चल रहा है। अत: सम्यक्त्वी बनें, लोगों को जिसका अभी तक ज्ञान नहीं था इसलिए उससे दूर रहे अब तक। लेकिन अभी सुधर सकते हैं। क्योंकि कुछ लोग ऐसे हैं जिनके अन्दर वह अज्ञानता अभी भी है। वे देव तो मेरु के चक्कर लगा रहे हैं या भगवान की परिक्रमा दे रहे हैं और कुछ लोग उनकी परिक्रमा लगा रहे हैं। इसके बारे में मुझे एक प्रश्न करना है कि नवग्रह को सबने जाना कितने सारे ग्रह हैं कितने नक्षत्र हैं यहाँ पर सब कुछ बताया था आज दिगम्बर जैन धर्म में एक अज्ञान और आ गया है कि जगह-जगह नवग्रह विधान होने लगे हैं यह नवग्रह विधान क्या किसी आचार्य ने लिखा है? लगता है किसी पंडित का लिखा है या दक्षिण के कोई भट्टारकों की परम्परा बीच में आयी है तो उन्हीं के निर्देशन में कुछ लिखे गये विधान हो सकते हैं। विधान का अर्थ पूजा होती है। मतलब यह नवग्रह की पूजा हो गई और उनमें तीर्थंकरों को निश्चित किया गया है, नौ तीर्थंकर निश्चित कर दिये हैं कोई बोलते हैं चौबीस, आज कई जगह जहाँ नवग्रह मंदिर बनाये वहाँ की बात कह रहा हूँ कि हमने देखा नवग्रह मंदिर बनाये उसमें नौ ही तीर्थंकर रखे। एक-एक ग्रह पर एक-एक तीर्थंकर निश्चित कर दिये। इस पर एक प्रश्न है मेरा जिसका जवाब आप सबको देना है कि चौबीस तीर्थंकरों में कोई भी तीर्थंकर ऐसे नहीं है जिनमें से किसी में शक्ति ज्यादा हो और किसी में कम हो लेकिन नवग्रहों में नौ ही तीर्थंकरों को क्यों लिया, बाकी को क्यों छोड़ दिया? नव ही तीर्थंकरों की कल्पना उनके विमानों में करना गलत बात है। नौ तीर्थंकरों को ले लिया और बाकी को छोड़ दिया तो जब यह वर्तमान चौबीसी हुई ही नहीं

थी तब कौन से तीर्थंकर थे वहाँ? तो यह अनादि काल की व्यवस्था नहीं रही। यह तो इसी काल की कल्पना है। तमिलनाडु में मैंने देखा, मैं सात वर्ष वहाँ पर रहा था, जहाँ जिनमंदिरों के अलावा मात्र एक जगह ही नवग्रह मंदिर था। नवग्रह की मूर्तियाँ थी उसके ऊपर एक-एक करके नौ तीर्थंकर भगवानों की आकृतियाँ बनी थी। इसके बाद धीरे-धीरे हिन्दुओं जैसा प्रचलन हुआ और कई गाँव में कई जगह जहाँ मेरा विहार नहीं होता था या जहाँ मैं नहीं गया था वहाँ पर भट्टारकों के मार्गदर्शन में नवग्रह मंदिर बनाये गये नया प्रचलन चल पड़ा है। जिसका मैंने खण्डन भी किया था और कहा था कि नवग्रह की जगह आप नवदेवता रखो। एक जगह तो नवदेवता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। समाज वालों को भी बहुत भक्ति थी इसलिए वहाँ पर नवग्रह के जगह पर नवदेवता बिम्ब रखा गया। वीतराग नवदेवता रखेंगे तो हम भी परिक्रमा लगायेंगे अन्यथा हम वहाँ जायेंगे भी नहीं और आप लोगों को महा मिथ्यात्व का दोष लगेगा ऐसा समझाया था। अभी उत्तर भारत में जो नया प्रचलन चल रहा है उसकी क्या आवश्यकता है? आप चौबीसी बना सकते हैं, नवदेवता मंदिर बना सकते हैं जिसमें पंच परमेष्ठी और जिन धर्म, जिन श्रुत, जिन चैत्य और जिन चैत्यालय इस प्रकार नवदेवता की पूजा कर सकते हैं। अन्यथा सरागता में क्या रखा है? कुछ भी नहीं।

किसी-किसी जगह हम देखते हैं कि समवशरण की रचना में बड़ी कमी रहती है जैसे शिखरजी में एक समवशरण बना है जो बहुत पहले से बना हुआ है, गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी जब आये थे तब भी था। हमने कुछ गल्तियाँ देखीं जो आगम से बड़ी भूल मानी जायेगी। वह क्या है ? कि बारह सभाओं की चार सभाओं में ही देवियाँ बैठती हैं लेकिन उन्होंने क्या किया है कि भगवान के नीचे जो कटनी रहती है उसमें देवियाँ बिठायी हैं, यक्ष, यक्षणी बिठा रखी हैं बल्कि वे तो जब भगवान की दिव्यध्वनी सुनती हैं तो भगवान के तरफ मुख करके बैठती हैं और सभाओं में बैठती हैं। यक्ष देव चँवर ढोरते हैं चँवर ढोरने वाले यक्ष दिखते नहीं हैं केवल चँवर मात्र दृष्टिगोचर होते हैं ऐसा आगम है और कोई देव धर्मचक्र लेकर भी खड़े रहते हैं। लेकिन कटनी में सभा के लोगों

की तरफ मुख करके कोई देव, देवता नहीं रहते हैं सम्मेद शिखर के समवशरण को देखकर के हम ऐसा सबक न लें कि हमें भी ऐसा ही समवसरण का रूप बनाना चाहिए। इसलिए आज यह कहना जरूर था और साथ में ये नवग्रह मंदिर बनना भी आगमिक नहीं है, और नवग्रह विधान भी आगमिक नहीं लगता। आप नवदेवता विधान करिए या शान्ति विधान करिए। शान्ति विधान इतना श्रेष्ठ है कि इसमें सम्पूर्ण तीन लोक के देवताओं को, चारों निकाय के देवों को बुलाते हैं कि आप भी आइये और हमारे साथ पूजा रचाइये। ऐसे वर्णन सहित बहुत अच्छा विधान है। उस नवग्रह विधान की जगह पर आप यह शान्ति विधान करेंगे तो सारे देव आप से खुश हो जायेंगे। नहीं तो नवग्रह मात्र ही आयेंगे और कौन आयेंगे? सौधर्म इन्द्र वगैरह देव आपसे नाराज भी हो सकते हैं। वे कहेंगे कि मैं भवनत्रिक से ऊपर बैठा हूँ उनका दादा या राजा जैसा कहिये और तुम लोग मुझे याद नहीं करते और तुम तो हमारे नौकर-चाकर जैसों को याद करते हो, मैं ही तो उनको कहता हूँ कि पानी वर्षा करो, हवा बहाओ और चाँवर ढोरो, यह करो, वह करो, और वे मेरे अनुसार कार्य करते रहते हैं ऐसे नौकर-चाकर सदृश देवों को तुम मनुष्य लोग याद करते हो। और मेरे जैसे सौधर्म इन्द्रादि को क्यों छोड़ दिया है। हमने तो तीर्थंकरों के पंच कल्याणक किये, जीवन भर सेवा की फिर भी मुझे क्यों छोड़ दिया और मेरे नौकर-चाकरों को याद करके पूजा में लगे हो ऐसी योग्यता का विचार न करना भी मिथ्यात्व है। यह बिल्कुल गलत है। अतः आज सम्यग्दर्शन को धारण कर उसके प्रचार प्रसार की भी बड़ी आवश्यकता है। अंत में लोक प्रचलित मार्मिक पंक्तियों को अवश्य याद रखें कि-

मिथ्यात्व से अनुराग करके सत्य पाना चाहते हैं।
विपरीत मार्ग पर चलकर निरन्तर लक्ष्य पाना चाहते हैं॥
देखो विरोधाभाष कितना है उनके जीवन में कि-
नीम के वे बीज बोकर आम पाना चाहते हैं॥

- महावीर भगवान की जय -

7- युग के आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभनाथ

श्रीमत्परम-गम्भीर, स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम्।
जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनम्॥

जिनागम में 'तीर्थंकरोतीति तीर्थंकरः' यह एक सुन्दर परिभाषित तीर्थंकर का व्युत्पत्ति अर्थ हमें तीर्थंकर पद के महात्म्य को दर्शाता है। संसार समुद्र से तारक तीर्थ रूप महान उपकारी तत्त्वमय मोक्षमार्ग को बतलाने वाले इस वर्तमान चौबीसी के प्रथम जिनशासन रूप तीर्थ के कर्त्ता थे वृषभनाथ अपरनाम आदिनाथ भगवान, जिन से ही इस हुण्डाअवसर्पिणी के चतुर्थकाल के पूर्व व तृतीय काल के अन्त में प्रथम रूप से जिनशासन का उद्भव हुआ।

अनादिनिधन इस संसार में संसारी आत्मा अनादिकाल से सुख दुःख का वेदन करती हुई बीज वृक्ष की परम्परा के सादृश्य विधि फल के अनुसार चतुर्गति के भ्रमण में संलग्न है और इस संसार चक्र से अतीत आत्मा की एक अवस्था है जो है मोक्ष। जैसे कि बीज पहले या वृक्ष पहले इस समाधान से अनिर्णीत वृक्ष, बीज की परम्परा अनादि से है लेकिन अन्त सहित है। अगर ऐसे बीज को जलाकर भस्म कर दिया जाये तो उस जले बीज से वृक्ष की उत्पत्ति नहीं, इसी तरह ध्याग्नि से कर्म बीज के दग्ध हो जाने या अन्त हो जाने पर संसार भ्रमण की या पुनर्जन्म की परम्परा का अन्त हो जाता है। वह आत्मा दुग्ध की अन्तिम अवस्था घृत के समान परम विशुद्ध बन सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लोक शिखर पर स्थित सिद्ध शिला पर सिद्ध परमेष्ठी के रूप में अनन्त काल के लिए विराजमान हो जाती है। इस प्रकार भव चक्र से निकलकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त होने में धर्म पुरुषार्थ ही परम सहायक माना गया है।

यह जगत अनादि समय से चला आ रहा है। समय के परिवर्तन से इस जगत में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हुआ करते हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में तथा जीवों की अवस्था में उलट-फेर हमारे सामने नित्य प्रति हुआ करते हैं। जगत के महान परिवर्तनों के अनुसार जीवों को कभी सुखमय वातावरण मिलता है और कभी सुख-दुःखमय, कभी दुःखमय, कभी महादुःखमय

परिस्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जैसे न सदा रात्रि रहती है और न सदा दिन रहता है, दिन-रात्रि का चक्र चलता रहता है। इसी तरह जगत के परिवर्तन से जगत निवासी संसारी जीवों को भी बदलती हुई सुख-दु:ख मय परिस्थिति में निर्वाह करना पड़ता है।

असंख्य वर्ष पहले यहाँ महान सुखमय परिस्थिति थी, यहाँ सर्वत्र कल्पवृक्ष होते थे जिनके प्रकाश से सदा दिन का सा प्रकाश बना रहता था, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, रहन-सहन आदि के पदार्थ उन कल्पवृक्षों से अनायास मिल जाया करते थे। किसी भी मनुष्य या पशु-पक्षी को अपने जीवन-निर्वाह के लिये कुछ न करना पड़ता था। उस सुखमय समय को भोगयुग कहते हैं।

किन्तु समय ने पलटा खाया अत: वह भोगयुग समाप्त हो गया जीवन-निर्वाह की सामग्री देने वाले कल्पवृक्ष स्वयं धीरे-धीरे नष्ट-भ्रष्ट होते गये। जैसे कि शीतऋतु के आगमन पर वर्षा काल के बादल विलीन हो जाते हैं। उस समय जनता के सामने अनेक प्रकार की कठिन समस्याएं क्रम से आने लगीं। उन विकट समस्याओं को सुलझाने के लिए उस समय क्रम से 14 युग प्रधान नेताओं का अवतार हुआ। जिनका नाम मनु या कुलकर प्रसिद्ध हुआ। उनके नाम ये हैं- 1. प्रतिश्रुति, 2. सन्मति, 3. क्षेमंकर, 4 क्षेमन्धर, 5 सीमंकर, 6. सीमन्धर, 7 विमलवाहन, 8 चक्षुष्मान, 9. यशस्वान, 10. अभिचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. मरुदेव, 13. प्रसेनजित और 14. नाभिराय।

ये मनु कुलकर जनसाधारण की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान थे तथा जनता के परम हितैषी थे। इनके समय मनुष्यों को जो उलझनें आईं उन उल्झनों को इन मनुओं ने अपने विशेष ज्ञानबल से सुलझाया।

अन्तिम मनु नाभिराय की गुणवती पत्नी मरूदेवी थी। मरूदेवी के गर्भ में अषाढ़ कृष्णा द्वितीय तिथि पर एक महान भाग्यशाली महान तेजस्वी पुत्र आया। उसके पुण्य प्रभाव से नाभिराय के घर स्वर्ग से देवों द्वारा रत्न-वर्षा होती रही। इस कारण जन्म से पहले उस गर्भस्थ शिशु का नाम जनता में हिरण्य गर्भ (सुवर्ण गर्भ वाला) प्रसिद्ध हुआ। चैत्र कृष्णा नवमी के दिन जब उस

प्रभावशाली पुत्र का जन्म हुआ तब भी देवों ने आकर महान उत्सव किया। उसके दाहिने पैर में बैल का चिन्ह था, इस कारण उनका नाम ऋषभनाथ या वृषभनाथ रखा गया।

ऋषभनाथ जन्म से ही महान अवधिज्ञानी थे, महान सुन्दर, महान बलवान और महान दयालु तथा पराक्रमी थे।

युवा हो जाने पर ऋषभनाथ का विवाह नन्दा तथा सुनन्दा नामक दो परम सुन्दरी गुणमयी कन्याओं से हुआ। नन्दा के गर्भ से भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक एक पुत्री हुई और सुनन्दा के उदर से बाहुबली नामक महा बलवान एक पुत्र एवं सुन्दरी नामक एक पुत्री का जन्म हुआ। उस समय जन साधारण को कल्पवृक्षों के न रहने से भोजन वस्त्र आदि जीवन-सामग्री मिलना दुर्लभ हो गया, अत: जनता भूख, सर्दी, गर्मी आदि से बहुत व्याकुल हुई। अपनी कष्ट कथा सुनाने के लिये मनुष्य नाभिराय के पास आये। नाभिराय ने अपने महान ज्ञानी सुपुत्र ऋषभनाथ की ओर संकेत किया। तब भगवान ऋषभनाथ ने अपने ज्ञानबल से लोगों को कृषि करके अन्न उत्पन्न करने की और अन्न से भोजन बनाने की विधि सिखलाई। रूई उपजा कर उससे वस्त्र बनाने के उपाय बतलाये। धातुओं तथा मिट्टी से बर्तन बनाने की प्रक्रिया समझाई। इसके सिवाय मनुष्यों को अस्त्र-शस्त्र चलाना, अनेक प्रकार की शिल्प कला बतलाई, व्यापार करने के उपाय बतलाये इत्यादि शिक्षाएं जनता को देकर उनके कष्ट कठिनाइयां दूर की। भगवान ऋषभनाथ ने अपने बड़े पुत्र भरत को नाट्य कला सिखलाई बाहुबली को मल्लयुद्ध में निपुण कर दिया। अन्य पुत्रों को राजनीति, युद्ध नीति आदि कलाओं की शिक्षा दी।

एक दिन भगवान आदिनाथ निश्चिन्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे तब उनकी दोनों पुत्रियां आकर उनकी गोद में बैठ गईं। ब्राह्मी बाएं घुटने पर बैठी और सुन्दरी दाहिने घुटने पर बैठी। दोनों पुत्रियों ने मीठी भाषा में कहा कि पिता जी, आपने सबको अनेक विद्याएं सिखलाई हैं, हमें भी कोई अक्षय विद्या दीजिए। भगवान आदिनाथ ने मुस्कराते हुए अपनी पुत्रियों के सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा कि अच्छा बेटी तुम अपना दाहिना हाथ खोल कर निकालो

तुमको मैं अक्षय विद्या सिखाता हूँ। तब ब्राह्मी ने अपना दाहिना हाथ भगवान के सामने कर दिया। भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से उनकी हथेली पर अ, इ आदि 16 स्वर और क, ख आदि 33 व्यंजन एवं 4 योगवाह अक्षर लिखकर उसको अक्षर-विद्या या लिपि विद्या सिखलाई। उस पुत्री के नाम से ही उस आद्य लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि जगत में प्रसिद्ध हुआ। सुन्दरी भगवान के दाहिने घुटने पर बैठी थी अत: उसकी हथेली पर भगवान ने अपने बाएं हाथ के अंगूठे से 1, 2, 3 आदि अंक लिख कर इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि की अंक-पद्धति तथा संकलन जोड़, विकलन बाकी, गुणा, भाग आदि गणित सिखाया। बायां हाथ होने के कारण उन अंकों के लिखने का क्रम अक्षरों से उलटा दाहिनी ओर से इकाई, दहाई आदि के रूप में प्रारम्भ होकर बायीं ओर लिखने की परिपाटी रूप बतलाया गया। अत: तभी से अंकों के लिखने की पद्धति अक्षरों की अपेक्षा उलटी चल पड़ी।

इस तरह भगवान आदिनाथ ने जगत में कर्मयुग, कृषि, शिल्प, विद्या, व्यापार आदि परिश्रम करके जीवन-निर्वाह करने के उपाय की सृष्टि-निर्माण या रचना की। इस कारण उनके नाम आदि-ब्रह्मा, प्रजापति, आदि-विधाता, आदिनाथ, आदीश्वर आदि जगत में विख्यात हुए।

बहुत समय तक भगवान आदिनाथ ने न्यायनीति से राज्य शासन किया। उनके राज्य में किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट नहीं था।

एक दिन वे राजसभा में बैठे थे। उस समय नीलांजना नामक अप्सरा सभा में नृत्य कर रही थी। नृत्य करते हुए ही उसकी आयु पूर्ण हो गई और तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना को देखकर भगवान आदिनाथ की विचारधारा बाहरी संसार से हटकर अन्तरंग की ओर आकर्षित हुई।

भगवान ने विचार किया कि यह आत्मा शरीराधीन होकर अपना अमूल्य समय शरीर की सेवा में, इन्द्रियों की इच्छाओं को तृप्त करने में, विषय भोगों के भोगने में व्यतीत कर देता है। यह अपने कल्याण के लिये कुछ नहीं कर पाता। अचानक इसको मृत्यु का अतिथि बनना पड़ता है। मैंने अब तक का अपना दीर्घ जीवन सांसारिक कार्यों में बिताया अपने ज्ञान और शक्ति का उपयोग मैंने अपने

लिए कुछ भी न किया, इस तरह तो मैं जन्म-मरण के चक्कर से भी न छूट पाऊंगा। अत: नीलांजना ने जैसे अपने जीवन में अपने हित के लिये कुछ न किया और अचानक उसकी मृत्यु हो गई, ऐसी घटना मेरे लिए भी हो सकती है। अत: अब मुझे गृहस्थाश्रम की कीचड़ से बाहर निकलकर आत्म-साधना करनी चाहिये।

ऐसा चिंतन करके भगवान ऋषभनाथ ने अपने बड़े पुत्र भरत को राज सिंहासन पर बिठाकर अपना समस्त राज्यभार तथा गृहस्थाश्रम का भार सौंप दिया।

अपने अन्य पुत्रों को थोड़ा-थोड़ा राज्य देकर स्वयं सब कुछ त्याग कर एकान्त शान्त वन में रवाना हो गये, वहाँ पर उन्होंने चैत्र कृष्णा नवमी को अपने शरीर के सभी वस्त्र आभूषण उतार दिये और नग्न होकर छह माह का योग लेकर आत्म साधना में बैठ गये। छह महिने तक एक आसन में बैठे रहे। छह मास निराहार रहकर ऐसी कठोर तपस्या करने के पश्चात् जब वे उठे, तो भोजन के लिये निकटवर्ती नगरी गांवों में घूमें किन्तु उस समय वे स्त्री-पुरुष यह नहीं जानते थे कि साधु को भोजन किस तरह कराना चाहिए। भगवान अपने मुख से कुछ बोलते नहीं थे। अत: उन्हें छह मास तक भोजन भी न मिल पाया। इस तरह एक वर्ष निराहार रहकर उन्होंने तपस्या की। एक वर्ष के बाद हस्तिनापुर में राजा श्रेयांस के यहाँ उन्हें विधि से आहार मिला। उस समय आपने केवल तीन चुल्लु गन्ने का रस पीकर पारणा की। तदनन्तर स्त्री-पुरुषों को साधु के भोजन कराने की विधि मालूम हो गई।

भगवान मौन रहकर वन, पर्वत, शमशान भूमि, नदी तट, गुफा आदि एकान्त शान्त स्थानों में विहार करके तपस्या करते रहे। इस तरह एक हजार वर्ष तक कठोर आत्म-साधना करने के बाद उन्होंने आत्म शत्रुओं काम, क्रोध, मद, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष, अज्ञान आदि दुर्भावों पर विजय प्राप्त की। तब वे फाल्गुन कृष्णा एकादशी को पूर्ण शुद्ध बुद्ध वीतराग सर्व ज्ञाता-दृष्टा अर्हन्त बन गये। आत्म-शुत्रओं पर विजय पाने के कारण उनका नाम '**जिन**' जीतने वाला विश्व विख्यात हुआ। उसी समय उनका मौन-भंग हुआ। उन्होंने सबसे प्रथम जो धर्म का प्रचार किया उस धर्म का नाम उनके प्रसिद्ध नाम '**जिन**' के अनुसार जैन

धर्म '**जिनस्य अयं धर्मः जैनधर्मः**' जग प्रसिद्ध हुआ।

उनके धर्म उपदेश से सर्व साधारण को लाभ पहुँचाने के लिए देवों द्वारा एक गोल सुन्दर विशाल 12 योजन का सभा मण्डप बनाया गया। उसमें 12 कक्ष बनाये, उन कक्षाओं में देव-देवियों, मनुष्य-स्त्रियाँ, साधु-साध्वियाँ तथा पशु-पक्षी आदि सभी जीव बैठकर भगवान का उपदेश सुनते थे।

उस समवशरण (सभा मण्डप) के बीच में तीन कटनी की वेदी होती थी। उसके ऊपर सिंहासन था, सिंहासन के बीच स्वर्णिम कमल का फूल बना था, उस कमल पर उससे 4 अंगुल ऊपर अधर पर भगवान विराजमान होते थे।

भगवान का मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर होता था किन्तु दैव चमत्कार से उनका मुख चारों दिशाओं में दिखाई देता था। इस कारण जन साधारण उन्हें कमलासन पर विराजमान चतुर्मुखी आदि ब्रह्मा भी कहते थे। भगवान ने आचारंग आदि 12 अंगों का तथा प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इन चार वेदों का उपदेश दिया उनके उपदेश का क्रमवार विवेचन या व्याख्या करने वाले पहले गणधर या गणेश उनके ही दीक्षित साधु पुत्र वृषभसेन हुये। वृषभसेन के बाद 63 गणधर और भी हुए। प्रथम आर्यिका ब्राह्मी थीं।

इस तरह भगवान ऋषभनाथ ने अपनी कैवल्य अर्हन्त अवस्था में बहुत लम्बे समय तक जैन धर्म का तथा मोक्षमार्ग का प्रचार किया। धर्म प्रचार के लिए उन्होंने सर्व देशों में विहार किया। इनके शरीर की ऊँचाई 500 धनुष थी। सम्पूर्ण आयु 84 लाख पूर्व वर्ष की थी। जगत में धर्म प्रचार करके वे फिर पूर्ण आत्म-साधना के लिए कैलाश पर्वत पर जा विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने अपनीआत्म-ब्रह्म में लीन होकर शुक्ल ध्यान के द्वारा अवशिष्ट कर्म शत्रुओं का क्षय किया। उस समय आपका नाम कैलाशपति प्रसिद्ध हुआ। माघ कृष्णा चौदस के दिन कैलाश पर्वत पर योग समाधि से आपने शेष कर्मों का क्षय करके पूर्ण मुक्ति प्राप्त की। अनन्तकाल के लिये अजर, अमर, नित्य, निरंजन, सच्चिदानन्द ब्रह्मा, परम परमात्मा बन गये। संसार के आवागमन से सदा के लिये छूट गये।

युग के आदि में ऋषभदेव (आदिनाथ भगवान) द्वारा जैन धर्म के अहिंसा

और अनेकान्त की प्रधानता होने के कारण इसकी महानता को बड़ा आदर्श रूप मानते हुए प्रायः सभी सम्प्रदायों ने इस जैन धर्म को तथा उसके उपदेष्टा तीर्थंकरों को बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हुए अपने-अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्रशंसनीय और स्तुत्य माना है। जैसे कि महाभारत में प्रथम तीर्थंकर की स्तुति में लिखा है कि-

पुनस्तत्रैव सर्वज्ञः सर्वदेव नमस्कृतः।
छात्रत्रयाति संयुक्तः पूज्य मूर्तिरसौवहन्॥ 1॥
परमात्मानमात्मानं लसत्क्वेवलनिर्मलम्।
निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महेद् वृषभ॥ 2॥

अर्थात् वृषभदेव सर्वज्ञ थे, सब देवों से नमस्कृत थे, निर्मल केवलज्ञान से सुशोभित थे ऐसे परम निरंजन, निराकार, श्रेष्ठ वृषभ की पूजा करनी चाहिए।

महापुरुष तीर्थंकरों की जन्म भूमि के रूप में देश का नाम भारत कैसे पड़ा इसके संदर्भ में मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि-

अग्नीन्ध्र सूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत सुतो द्विजः।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः॥ 69॥
सोऽभिषिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यामस्थितः।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमशंसयः॥ 40॥
हिमाव्हं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मास्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥ 41॥

अर्थात्- अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ जो कि अपने सौ भाईयों में बड़ा था। ऋषभ देव ने अपने बड़े पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं प्रव्रज्या (साधु दीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभदेव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

इसी तरह अग्नि पुराण में भी लिखा है कि-

ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
तस्माद् भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभवत्॥ 12॥

अर्थात्- मरुदेवी मां से ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारत वर्ष हुआ। स्वयंभू स्तोत्र में भी ऋषभदेव-वृषभनाथ के सम्बन्ध में भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने इस प्रकार कहा कि- जो स्वयंभू थे- दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर अनन्त चतुष्टय स्वरूप आचरण कर अनन्त चतुष्ट स्वरूप हुये थे, प्राणियों के लिए हितकारक थे, सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त किरणों के द्वारा अन्धकार को नष्ट करते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे।

जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने कर्मभूमि के प्रारम्भ में मति, श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर जीवित रहने की इच्छुक जनता को खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में शिक्षित किया था और फिर हेय, उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए जो ममता भाव से परिग्रह विषयक आसक्ति से विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे। जो मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार-समुद्र से पार उतरने के इच्छुक थे, जितेन्द्रिय थे, सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, परिषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे, गृहीत व्रत से अविचलित रहने वाले थे, इक्ष्वाकु कुल अथवा समस्त राजवंशों में आदि पुरुष थे और जिन्होंने किसी अन्य राजा के द्वारा अभक्त होने से पतिव्रता इस समुद्र के जल रूप वस्त्र को धारण करने वाली समुद्रान्त, धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी रूपी स्त्री को पतिव्रता स्त्री के समान छोड़कर दीक्षा धारण की थी। जिन्होंने अपने काम-क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण चार घातिया कर्मों को परम शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा निर्दयता पूर्वक भस्म भाव को प्राप्त कराया है समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणी समूह के लिए वास्तविक

जीवादि तत्त्वों का स्वरूप कहा और अन्त में जो मोक्ष स्थान के अविनाशी-अनन्त सुख के स्वामी हुए। जिनका केवलज्ञान रूप चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा पूजित हैं, जीवाजीवादि समस्त पदार्थों के विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्म का स्वरूप है, ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं, चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन को जीत लिया है अथवा जिनका शासन क्षुद्रवादियों के द्वारा नहीं जीता जा सकता है वे धर्म से शोभित रहने वाले वृषभनाथ भगवान मेरे चित्त को पवित्र करें रागादि विकारी भावों से रहित कर निर्मल बनावें। किसी ने सही कहा है कि-

नहीं विश्वास होता है, धरम पर आज मानव को।
न निज में वास हो तबतक, हो दुःख आभास मानव को॥
तहे दिल से करे अनुभव, तभी मजहब समझ आवे।
सिर्फ ये धर्म ही देता है, सभी कुछ आज मानव को॥

- महावीर भगवान की जय -

8- तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका दिव्य संदेश

जयतु जिन वर्धमानस्त्रिभुवन हित धर्मचक्र नीरज बन्धुः।
त्रिदशपति मुकुट भासुर, चूड़ामणि रश्मि रञ्जितारुण चरणः॥

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व स्वर्गिक सुखों को भोगकर मनुष्य रूप इस जम्बूदीप के भरत क्षेत्र में अवतरित होने वाले भगवान वर्द्धमान महावीर वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर थे। भगवान महावीर के जैन शासन से हमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के कल्याणकारी सूत्र मिले और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय मोक्ष मार्ग के रूप में उत्तम क्षमादि दस धर्म एवं दर्शन व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाओं का उपदेश मिला, जिस मार्ग पर चलकर आज भी मुनि तथा श्रावक रूप भव्यात्मायें मोक्ष सुख को हासिल करने के लिए निरन्तर अपनी त्याग तपस्या मय साधना में रत रहते हैं।

आज के वर्तमान परिवेश में भी वर्द्धमान महावीर के सन्देश अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं क्योंकि अगर अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार और हिंसक प्रवृत्ति के बीच भगवान व निःस्वार्थी गुरुओं का संदेश हमें न मिलता तो भारत को गारत होने में और आर्यों को म्लेच्छ बनने में मानव को कोई विलम्ब नहीं रहता अतः वर्तमान को वर्द्धमान महावीर मिले यह हमारा बड़ा सौभाग्य है।

भगवान महावीर का गर्भ कल्याणक आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को हुआ और जन्म कल्याणक लगभग 2608 वर्ष पूर्व बिहार के वैशाली राज्य के कुण्डलपुर में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। ऐसे मंगलमय वातावरण में देवों ने रत्नमय पुष्पों की खूब वर्षा कर मेरु पर्वत पर तीर्थंकर महावीर का जन्माभिषेक उत्सव मनाया था। उनकी माता का नाम त्रिशाला देवी (प्रियकारिणी) एवं पिता का नाम राजा सिद्धार्थ था। भगवान महावीर के जन्म का नाम वर्धमान था। जीवन की विशिष्ट घटनाओं से आपको देश की जनता वीर, अतिवीर और सन्मति इन नामों से भी पुकारा करती थी।

राजभवन में खेले-कूदे और जवान हुए तीर्थंकर महावीर जब युवावस्था को प्राप्त हुए तब उनके माता-पिता द्वारा उनसे अनेक बार विवाह का आग्रह

किये जाने पर भी उन्होंने उस संसार के बंधन में बंधने का आग्रह अस्वीकार कर दिया और मात्र तीस वर्ष तक सामाजिक अनुभवों को प्राप्त करने के उपरान्त एक शुभ घड़ी में पूर्व-भव की स्मृतियों (जातिस्मरण) के द्वारा सांसारिक भोगों की असारता का चिंतवन करते हुए वैराग्य को प्राप्त हो गये और वन में जा मगसिर कृष्णा दसमी के दिन मुनि दीक्षा लेकर नग्न दिगम्बर साधु भेष धारण कर आत्म-ध्यान रूप तपस्या में लीन हो गये। स्वर्गादिक के देवताओं ने उनके चरणों में उपस्थित होकर उनके दीक्षा (तप) कल्याणक की बड़ी भक्तिभाव से पूजा की।

भगवान महावीर लगातार बारह वर्षों तक जंगल, उपवन आदि में घोर तपस्या करते रहे और उन्होंने एक दिन अपने शुक्लध्यान के द्वारा वैशाख शुक्ला दसमी के दिन केवलज्ञान को उत्पन्न कर अरिहंत अवस्था प्राप्त कर लिया। ऐसी मंगल बेला में देवों ने उनकी महापूजा की और उनकी मंगलवाणी (दिव्यध्वनि) सुनने हेतु एक योजन की समवसरण सभा का निर्माण किया था, जिस स्वर्णिम मणिमय समवसरण की बारह सभाओं में बैठकर सब जीव उन प्रभु के दिव्य उपदेश को सुना करते थे। ऐसे समवसरण में भगवान महावीर के उपदेश की विस्तृत व्याख्या करने वाले मुनियों में सबसे प्रधान इन्द्रभूति गौतम थे। जो गणधर के रूप में मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यय ऐसे चार ज्ञानों के धारी होकर द्वादशांग रूप शास्त्रों की रचना किया करते थे। ऐसे भव्य-समवसरण में इन्द्रभूति गौतम को आदि लेकर ग्यारह गणधर तथा अवधिज्ञान आदि के धारी बहुसंख्या में मुनि और चन्दनबाला जैसी प्रधान आर्यिका को लेकर अनेक आर्यिकाएँ, श्रावक-श्राविकाएँ, देव-देवियाँ एवं राजा-महाराजा और यहाँ तक कि हाथी, शेर, गाय प्राणी भी उपस्थित रहते थे। और भगवान के दया धर्म के सातिशय प्रभाव से वे शेर, गाय भी एक जलकुण्ड में एक साथ मिलकर पानी पीने लग जाते थे।

भगवान महावीर के शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। उनका चिन्ह चतुर्मख सिंह था। भगवान के समवसरण का विहार सम्पूर्ण भारत में तीस वर्ष तक होता रहा और उन्होंने हिंसा, अन्याय और अनीति को पराजय दिलाकर न्याय, नीति, सदाचार, सद्विचार और अहिंसा धर्म की पताका लहराई,

तदुपरान्त उन भगवान महावीर ने बहत्तर वर्ष की आयु में कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पिछली रात्रि में प्रात:काल की प्रत्यूष बेला में आत्मध्यान रूप समाधि साधना के द्वारा बिहार प्रांत के पावापुरी के सरोज सरोवर के मध्य से कार्माण रूप सम्पूर्ण शरीर को छोड़कर (क्षयकर) निर्वाण रूप मोक्ष अवस्था में सिद्ध परमेष्ठी के परम पद को प्राप्त किया था।

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के पूर्व जैन धर्म में तेईस तीर्थंकर हुए, उनके नाम, जन्म, माता-पिता आदि का विशद वृत्तांत जैन साहित्य में सुरक्षित हैं।

वेद-उपनिषद् जिनके गीत गा रहे हैं, ऐसे भगवान ऋषभदेव जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर हैं। भगवान ऋषभनाथ के चरित्र का उल्लेख भागवत, वेद, पुराण आदि में भी बड़े आदर से हुआ है। अत: यह सुविदित है कि जैन धर्म की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। आदिम ब्रह्मा आदिम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती के कारण इस देश का नाम भारत पड़ा है।

इस देश में आज बहुत सारे धर्म विद्यमान हैं, प्रत्येक धर्म ने अहिंसा का वर्णन किया है, लेकिन जैन धर्म में अहिंसा के बारे में जो विशद एवं सूक्ष्म वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र नहीं है। भगवान महावीर एवं उनके अनुयायी, अहिंसा के बारे में सिर्फ उपदेश देने तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु वे उपदेश से अधिक अहिंसा का पालन भी करते हैं।

भगवान महावीर ने '**अहिंसा परमोधर्म:**' कहा है, अहिंसा, दया, अनुकम्पा, प्रेम को ही भगवान ने सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। प्राणी मात्र को प्रेम की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि "जियो और जीने दो" क्योंकि सबको अपना प्राण प्यारा होता है। अपने समान दूसरों को कष्ट होता है। कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। अत: भगवान महावीर कहते हैं कि आत्म समत्व, वीतरागत्व एवं अहिंसा ही भक्त से भगवान बनने का परम साधन है।

जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है, अणु-परमाणु, सूर्य-चंद्र, पेड़-पौधे आदि वैज्ञानिक विषयों का जैन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन मिलता है। जैसे जैन ग्रन्थों में एक बूंद पानी में असंख्यात जीवों का वर्णन आता है। आज विज्ञान ने भी एक

बूंद पानी में 36,450 जीव स्वीकारा है। भगवान महावीर एवं भगवान ऋषभदेव की दीक्षा के बाद हजारों वर्ष पूर्व इन पेड़-पौधों पर पैर नहीं रखते थे। इनका अनुकरण उनके अनुयायी आज भी कर रहे हैं। आज विज्ञान ने इस बात को सिद्ध करके दिखाया है कि पेड़-पौधों में जीव है। भगवान महावीर ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उपदेश दिया है।

'**जियो और जीने दो**' का संदेश देने वाले भगवान महावीर हिंसा को सबसे बड़ा पाप मानते थे। द्रव्य-हिंसा और भाव-हिंसा के रूप में हिंसा के दो भेद हैं। इसमें भी द्रव्य-हिंसा एवं भाव-हिंसा के दो-दो भेद हैं, एक स्वद्रव्य हिंसा है तो एक पर-द्रव्य हिंसा। अपने शरीर एवं शरीर के अव्ययों का घात करना स्वद्रव्य हिंसा है और दूसरों के शरीर एवं शरीर के अव्ययों का घात करना पर-द्रव्य हिंसा है। स्वयं कषाय करना जैसे क्रोध में संतप्त होना अथवा किसी दूसरे को मारने का भाव करना स्वभाव हिंसा है, दूसरे को कषायों से संतप्त कराना अथवा दूसरे में किसी दूसरे को मारने का भाव जागृत कराना परभाव हिंसा है।

जीवन शोधन की, व्यक्तिगत मुक्ति की प्रक्रिया और समाज तथा विश्व में शांति स्थापना की लोकेषणा का मूल मंत्र 'अहिंसा' ही है। अहिंसा के माध्यम से ही सारे संसार की समस्याएं समाप्त हो सकती हैं, हिंसा के माध्यम से नहीं। ये अटल सत्य है। भारत एक धर्म प्रधान देश है। अहिंसा के अवतार वृषभदेव, राम, वीर, महावीर, महात्मा गांधी, विनोबाजी, कबीर, इन महापुरुषों की जन्मभूमि है, किन्तु आज इस पवित्र देश में कत्लखाने आदि के माध्यम से हिंसा का तांडव नृत्य हो रहा है, हिंसा इस देश की संस्कृति एवं समाज के लिए अभिशाप ही है। कम से कम इन महापुरुषों के जन्मदिन पर तो कत्लखाने आदि बंद होना चाहिए।

जयंती पर जन्म बालक का होता है। भगवान का नहीं। हाँ! बालक ही भगवान बनता है। अत: भगवान महावीर ने कहा है कि मनुष्य जन्म से नहीं कर्म

से महान बनता है। एक बार भगवान बनने के बाद पुन: वे लौटकर संसार में नहीं आते। जैसे दूध एक बार घी के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो पुन: वह दूध का रूप नहीं ले सकता है। सत्य और अहिंसा ही इस देश की संस्कृति है।

सत्य को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें भगवान महावीर के सिद्धांत अनेकांत और स्याद्वाद की शरण में जाना पड़ेगा। इसके बिना हम सत्य को नहीं समझ सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अनेक शक्ति, अनेक गुण और अनेक धर्मों का पुंज है और एक धर्म, एक शक्ति की विवक्षा कर कथन करते समय अन्य अविवक्षित गुण धर्मों का अभाव नहीं होता, पर उनकी गौणता रहती है जैसे कि एक गुलाब का फूल है, गुलाब के फूल में अनन्त धर्म विद्यमान हैं। जैसे रूप है, रस, गंध है, स्पर्श है, आदि अनेक धर्म हुए भी कोई व्यक्ति एक ही धर्म को मुख्य मानकर कहता है कि यह गुलाब का फूल कितना सुंदर है। कोई दूसरा कहता है कि यह गुलाब का फूल कितना कोमल है, किंतु गुलाब का फूल मात्र सुंदर और कोमल ही नहीं, उसमें अन्य अनेक धर्म भी विद्यमान हैं, क्योंकि उसमें गंध भी है, रस भी है। अब सबका कथन एक साथ, एक शब्द से संभव नहीं है इसलिये किसी एक धर्म का कथन करते समय मुख्य और गौणकर कथन करते हैं। अत: भगवान महावीर कहते हैं कि उलझनों को सुलझाने का नाम अनेकांत है, पक्षपात करने वाला व्यक्ति अनेकांतवादी नहीं हो सकता है क्योंकि एक पक्ष मात्र से पक्षी भी नहीं उड़ सकता है, अत: पक्षपात करने से देश समाज आदि में सुख, शांति, समृद्धि आदि नहीं हो सकती है क्योंकि पक्षपात से क्लेश, कलह,तनाव, असामाजिकता आदि दोष बढ़ जाते हैं।

अत: वाद-विवाद के लिए नहीं निर्विवाद के लिए परिवार समाज, देश आदि में सुख-शांति, समृद्धि के लिए, विषमता को उखाड़ कर फेंकने के लिए केवलज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनेकांत का सहारा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। मिथ्या स्वार्थ बुद्धि एकांत है, परमार्थ बुद्धि में अनेकांत है। एक की सुरक्षा एकांत है, अनेक की सुरक्षा अनेकांत है। अनेकांत के प्रयोग से सारा विश्व सुखी हो सकता है।

'भी' का अर्थ अनेकांत है, 'ही' का अर्थ एकांत। 'भी' का अर्थ कथन्चित है, 'ही' का अर्थ वस्तु के अन्य पहलुओं को गौण करना है। अपेक्षा किये बिना मेरा ही सत्य कहना स्याद्वाद नहीं तेरा भी कथन्चित सत्य है ऐसा कहना स्याद्वाद है। ही से भी की ओर स्याद्वाद का लक्ष्य है अनेकांत वाच्य है, स्याद्वाद वाचक है।

एक व्यक्ति किसी की दृष्टि से मुक्त है तो किसी दृष्टि संसारी है, तो किसी दृष्टि से मामा है, तो किसी दूसरे की दृष्टि से चाचा भी है और किसी की दृष्टि से भतीजा भी है, पिता भी है, पुत्र, देशी, विदेशी तथा अपना, पराया भी है आदि-आदि। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थान, भिन्न-भिन्न दृष्टाओं एवं भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने से यह ज्ञात होता है कि एक वस्तु में अनेक धर्म और शक्तियाँ विद्यमान हैं। यदि नहीं मानेंगे तो मिथ्यात्त्व, क्लेश, कषाय, असामाजिकता, तनाव आदि बढ़ जायेंगे। इस प्रकार अनेकांतात्मक दृष्टि के बिना संसार का कोई भी व्यवहारिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। ना ही समस्याएं समाप्त हो सकती हैं और ना ही संसार सुखी हो सकता है।

संसार परिभ्रमण के लिए नहीं, संसार में मुक्ति के लिए, स्वभाव की प्राप्ति के लिए, दु:ख से निवृत्ति के लिए, संपूर्ण संसार की समस्याओं की समाप्ति के लिए, उलझनों को सुलझाने के लिए, वाद-विवाद से निर्विवाद होने के लिये परिवार, देश, समाज आदि में सुख, शांति, समृद्धि के लिए तनाव, असामाजिकता, क्लेश, कलह, विषमता को दूर करने के लिए जीवन शोधन के लिये, विश्व में शांति के लिये, दुष्प्रवृत्ति मिथ्यात्त्व एवं अपराध से बचने के लिये हमें हठाग्रह, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करना ही पड़ेगा और भगवान महावीर के सिद्धांत अनेकांत, स्याद्वाद, अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को अपनाना ही पड़ेगा, तभी हम सुखी हो सकेंगे अन्यथा धर्म के मार्ग को पाना संभव नहीं।

अत: हमें मात्र भगवान महावीर की जय बोलना ही नहीं, वरन उन भगवान महावीर के समान चलना भी पड़ेगा। तभी हम स्वयं के कल्याण के

साथ-साथ परिवार, समाज, देश को समृद्ध और सुखी बना सकेंगे तथा सारे संसार की सुख-शांति में सहयोग देकर भक्त से भगवान अवश्य बनेंगे और मोक्ष के अनन्त सुख पायेंगे।

किसी ने सच ही कहा है कि -

सच है यदि महावीर प्रभु, संयम का रूप नहीं धरते।
जो अपनी काया से युग का, यदि काया कल्प नहीं करते॥
मानवता मान नहीं पाती, यदि जीवित मंत्र नहीं होते।
यह भारत गारत बना जाता, यदि ये भगवंत नहीं होते॥

-महावीर भगवान की जय-

9- भावना भव नासिनी

मङ्गलाचरण

देवों के भी देव रहें वे, छियालीस गुण के धारी ।
उत्तम गति वा शिव के कर्त्ता, मंगलकारी उपकारी ॥
अति सुंदर तन निर्मल जिनका, एक हजार आठ लक्षण ।
शुभकर सुंदर मनहर जिनवर, सदा नमन हो मम क्षण-क्षण ॥

षोडस भावनाओं का वर्तमान परिपेक्ष में व्यवहारिक और व्यापक रूप एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

अनन्त अलोकाकाश में स्थित ३४३ घनराजू प्रमाण इस लोक में अनन्तानन्त जीवराशि है जो कर्मों के आश्रित होकर चतुर्गति एवं चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रही है। यह भ्रमण अनादि काल से चल रहा है। अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त तथा भव्य की अपेक्षा अनादि सान्त जानना चाहिए। जैसे बीज वृक्ष की परम्परा तभी तक चलती रहती है जबतक बीज को जलाकर नष्ट न कर दिया जाय और वैसे ही जीव का संसार भ्रमण तभी तक चलता रहता है जबतक अष्टकर्म रूपी बीज को या कार्मण शरीर को ध्यान रूपी अग्नि से नष्ट न कर दिया जाय।

प्रत्येक संसारी प्राणी को ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी आदि अष्टकर्म विभिन्न प्रकार के फल देकर सुखी-दु:खी करते रहते हैं। संसार में जो कर्माधीन सुख होता है वह विनश्वर व दु:खमिश्रित होने से दु:ख-सदृश या सुखाभास ही कहा गया है। इन्द्रिय-विषय के सुख के सम्बन्ध में प्रवचनसार में कहा गया है कि-

सपरं बाधासहिदं, विच्छिण्णं बंधकारणं विसयं।
जं इंदियेहिं लद्धं, तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥७६॥

अर्थ - जो इन्द्रियों से उत्पन्न सुख है वह पराधीन, बाधा से सहित स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाने वाला पापकर्म के बंध का कारण और परिवर्तनशील (क्षणभंगुर) रूप होने से दु:ख ही है, ऐसा जानना चाहिए।

ज्ञानावरणीकर्म ज्ञान की उन्नति में बाधा उत्पन्न करता है, दर्शनावरणीकर्म दर्शन में बाधक बनता है। वेदनीयकर्म साता-असाता का वेदन करता रहता है,

मोहनीयकर्म अपने स्वरूप को भुलाकर पर में अपनत्व की मूढ़बुद्धि उत्पन्न कराता है या त्याग संयम में बाधक बनता है। आयुकर्म किसी एक गति में जीवन पर्यंत रोके रहता है। नामकर्म विभिन्न तरह के शरीरों में रूप-कुरूप आदि बनाता है। गोत्रकर्म नीच-उच्च कुल आदि में उपजाता है और अन्तरायकर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं शक्ति या सामर्थ्य में विघ्न उपस्थित करता है। इस तरह कर्मों के आश्रित जीव संसार में गति, गति में इन्द्रियां, इन्द्रियों को विषय, विषयों में राग-द्वेष और राग-द्वेष से कर्मबन्ध को करते रहते हैं। अष्ट कर्मों का नाश सद्भावना व समीचीन ध्यान से संभव है जब तक सम्यक्ध्यान एकाग्र नहीं होता तब तक ध्यान-अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती और जिसके बिना कर्म रूपी पेपर नहीं जलता और जैसे सूर्य की किरणें दूर्बीन से एकत्रित करके एक पेपर पर डाली जायें तो पेपर जल जाता है वैसे ही एक अन्तर्मुहूर्त तक शुक्ल-ध्यान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित होती है तो कर्म रूपी पेपर जलकर और आत्मा मुक्त होकर सिद्धगति को प्राप्त हो जाती है तथा शाश्वत अविनश्वर-सुख में सदा के लिए लोकाग्र में जाकर विराजमान हो जाती है।

उपर्युक्त ध्यान में साधन रूप सोलहकारण आदि सद्भावनाएँ उत्तम ध्यान द्वारा कर्मबन्ध से छुड़ाते हुए आत्मा को परिमल बनाकर मुक्ति-मंजिल की ओर ले जाती हैं। प्राय: लोक में देखा जाता है कि इस जगत में भावना के अनुरूप ही फल की उद्भूति होती है अत: कहावत है कि "जा की रही भावना जैसी, सुख-दु:ख की भरनी हो वैसी" श्रेष्ठ या धार्मिक भावना वाला प्राणी पापों से विलग हो, भव अर्थात् सांसारिक परिभ्रमण से दूर जाता है, उसके लिए शुभ भावनाएँ भाना आवश्यक है। आज तक संसार का परिभ्रमण अशुभ या पापामय भावनाओं से होता रहा और यह आत्मा दु:ख के सागर में गोते खाती रही। जब निकट भव्य जिन-धर्म रूपी नौका के सहारे संसार के किनारे पर पहुँचता है तब उसे ये शुभ भावनाएँ किनारे से भी निकलकर या ऊपर उठाकर मोक्ष-मंजिल पर बिठा देती हैं और ऐसी महान आत्मा ही अनन्तकाल के लिए अनन्त सुखादिक में तल्लीन हो पाती है।

इस तरह तीर्थंकर पद की प्राप्ति में भी ये उत्तम भावनाएँ कारण हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में **षोडसभावनाएँ** वर्णित है कि-

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौशक्तिस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्तकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य।-२४

अर्थात् - दर्शन की निर्मलता, विनय की समृद्धता, शीलों और व्रतों में निरतिचारपना, निरन्तर ज्ञानोपयोग, निरन्तर संवेग, यथाशक्ति त्याग, यथाशक्ति तपस्या, साधुओं के विघ्न निवारण करना, सेवा में तत्परपना, अर्हत्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत (उपाध्याय) भक्ति, शास्त्रभक्ति, नियमित आवश्यक पालन, मोक्षमार्ग की प्रभावना और सहधर्मियों में अकृत्रिम वात्सल्य होना ये षोडसकारण भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव हैं या तीर्थंकर प्रकृति के संचय में कारण हैं।

इन सोलह भावनाओं में सम्यग्दर्शन की मुख्यता है। साथ-साथ लोक कल्याण-उद्धार की भावना इन सभी भावनाओं में निहित है। लोक कल्याण में आत्मकल्याण अवश्यम्भावी है।

तीर्थंकर प्रकृति बंध के समय या प्रारम्भ में केवली द्वय अर्थात् केवली या श्रुतकेवली के मिलने पर उनकी सन्निधि में दर्शन की निर्मलता होती है और किन्हीं-किन्हीं निकट भव्यों को तीर्थंकर प्रकृति का संचय होना प्रारम्भ हो जाता है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है कि-

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थरबंधपारंभया, णरा केवलिदुगंते ॥93॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारम्भ प्रथमोपशम सम्यक्त्व में अथवा शेष तीन द्वितीयोपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शनों में अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर चार गुणस्थानवर्ती (अर्थात् सप्तम गुणस्थान तक वाले) मनुष्य केवली और श्रुतकेवली के सन्निकट (पादमूल में) करते हैं।

षोडस भावनाओं की व्यापकता को समझते हुए तीर्थंकर प्रकृति का

बंध कराने वाली हैं इसलिए इन षोडस भावनाओं के अन्तर्गत एक विशिष्टता की अपेक्षा से सभी आगम कथित भावनाओं का अस्तित्त्व कायम रखते हुए षोडस भावनाओं में अन्य सभी प्रशस्त भावनाएँ समाहित हो जाती हैं और इसी कारण इन विशिष्ट षोडस भावनाओं की व्यापकता स्वयमेव सिद्ध है।

षोडस भावनाओं में गर्भित होने वाली अन्य भावनाएँ- सबसे प्रथम हम भावनाओं के प्रकारों पर विचार करते हैं जैसे कि-

१. अपने व्रतों को निर्दोष बनाने वाली प्रत्येक व्रत की वाङ्मनोगुप्ति आदि पांच-पांच भावनाएँ।
२. दर्शनविशुद्धि आदि षोडस भावनाएँ।
३. अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाएँ।
४. शस्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः आदि सात भावनाएँ।
५. मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ।
६. रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति की भावनाएँ।
७. संवेग, वैराग्य रूप भावनाएँ।
८. अपनी शुद्ध आत्म-प्राप्ति की भावना।

पच्चीस भावनाएँ इस प्रकार हैं-

तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय के १,२,३ नं. सूत्र में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहते हुए व्रत; अणु और महा रूप से दो तरह के कहे हैं तथा उनकी स्थिरता हेतु "**तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च**" ऐसा ४ नं. के सूत्र में पांच-पांच भावनाओं के भाने का संकेत किया है। वे भावनाएँ क्रमशः इस प्रकार समझना चाहिए जैसे -

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥

अर्थात् - **वाङ्गुप्ति**-वचन न बोलना, **मनोगुप्ति**-मन की (अशुभ) प्रवृत्ति को रोकना, **ईर्यासमिति**- चार हाथ भूमि देखते हुए दिन में धर्म कार्य वश चलना, **आदान- निक्षेपण समिति**- सावधानी पूर्वक परिमार्जित करते हुए किसी वस्तु को उठाना और रखना और **अलोकितपान भोजन**-सूर्य प्रकाश में देख शोध कर पीना व खाना। इन भावनाओं के भाने से अहिंसा व्रत की रक्षा होती है। और

आगे-

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥५॥

अर्थात् - **क्रोधप्रत्याख्यान** - क्रोध का त्याग, **लोभप्रत्याख्यान**- लोभ का त्याग, **भीरुत्वप्रत्याख्यान**- भय का त्याग और **हास्यप्रत्याख्यान**- हास्य का त्याग तथा **अनुवीचिभाषण**- शास्त्रानुसार निर्दोष वचन प्रवृत्ति। इन पांच भावनाओं के भाने से सत्यव्रत की रक्षा होती है। तदुपरान्त-

शून्यागारविमोतावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥६॥

अर्थात् - **शून्यागार**- गृहस्थों या विषयी प्राणियों से दूर एकान्त निर्जन स्थान में वास करना, **विमोचितावास**- दूसरों द्वारा छोड़ दिये गये (खण्डहर आदि) निर्विरोध आवास में वास करना, **परोपरोधाकरण**- अपने ठहरने के स्थान पर किसी अन्य को ठहरने से नहीं रोकना,(स्वयं को बाधा हो तो वहाँ से अन्यत्र ठहर जाना) **भैक्ष्यशुद्धि**- आगमानुसार विधिवत् भिक्षावृत्ति से आहार करना, **सधर्माऽविसंवाद** - सहधर्मी जनों से यह मेरा, यह तेरा आदि रूप कलह नहीं करना ये पांच भावनाएँ अचौर्यव्रत की रक्षा हेतु कही गईं हैं। इसके बाद-

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर संस्कार त्यागाः पञ्च ॥७॥

अर्थात् - **स्त्री-राग-कथा श्रवण त्याग** - स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग, **तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग**- स्त्रियों के मनोहर अङ्गों के देखने का त्याग, **पूर्वरतानुस्मरण त्याग**- पूर्वावस्था या अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, **वृष्येष्टरस त्याग** - कामवर्धक गरिष्ठ और प्रिय रसों का त्याग और **स्वशरीर संस्कार त्याग** - अपने शरीर की सजावट का त्याग करने रूप पांच भावनाएँ ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा में पूर्ण सहायक होती हैं। और अंत में-

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च॥ ८ ॥

अर्थात् - स्पर्शनेन्द्रिय के कोमल-कठोर, रूखा-चिकना, हल्का-भारी, ठण्डा-गरम, ऐसे ८, रसनेन्द्रिय के (खट्टा-मीठा, कषायला, चर्परा और तीखा ऐसे पांच), घ्राणेन्द्रिय के (सुगन्ध और दुर्गन्ध ऐसे दो), चक्षुन्द्रिय के (काला, नीला, पीला, लाल, और सफेद ऐसे पांच) श्रोत्रेन्द्रिय के (स, रे, ग, म,प, द, नि

ऐसे सप्त स्वर) इष्ट अनिष्ट रूप ऐसे पांचों इन्द्रियों के (२७) विषयों में राग-द्वेष का त्याग करना परिग्रह त्याग व्रत की पांच भावनाएँ कहलाती है जिनके भाने से परिग्रह त्याग व्रत में वृद्धि होती है।

ऐसी पच्चीस भावनाएँ मुनि और श्रावकों के व्रतों की विशुद्धता में साक्षात् कारण हैं तथा इन पच्चीस भावनाओं का अन्तर्भाव षोडस कारण भावना की तीसरी शीलव्रतेष्वनतिचार भावना में हो जाता है।

पूर्व कथित षोडस भावनाओं का भी आपस की एक दूसरी भावनाओं में अन्तर्भाव हो जाता है अर्थात् ये सोलह ही भावनाएँ एक-दूसरी भावनाओं की पूरक हैं, इनके भाने से तीर्थंकर प्रकृति बंध का फल प्राप्त होता है।

बारह भावनाएँ भी तत्त्वार्थसूत्र के नवम अध्याय में इस तरह कही गयी हैं कि-

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभ धर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥९॥

अर्थात् - अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और जिनेन्द्र कथित जिनधर्म इन सभी का तत्त्व रूप बार-बार चिन्तवन करना अनुप्रेक्षाएँ कहलाती है।

ऐसी बारह भावनाएँ षोडसकारण भावनाओं की त्याग भावना के चिंतवन में चिंतवन की जाती हैं। सांसारिक भोगों के त्याग में बारह भावनाओं का चिन्तवन अपेक्षित है और जिसका फल उदासीनता-सह इन्द्रिय भोगों का त्याग है।

समाधि भक्ति के श्लोक नं. २ के अनुसार कही गयीं **सात भावनाएँ** इस तरह हैं कि-

शास्त्राभ्यासो, जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां, गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि, प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां, मम भव-भवे, यावदेतेपवर्गः॥ २॥

शास्त्राभ्यासः- जिनागम का अभ्यास करना, **जिनपतिनुतिः** जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार या स्तुति करना, **संगतिसर्वदार्यैः**- हमेशा आर्य

(चारित्रवान) पुरुषों की संगति करना, **सद्वृत्तानां गुणगणकथा**- सच्चारित्र परायण गुणियों की गुणकथा कहना, **दोष वादे मौनं**- दूसरों के दोष व विवाद में मौन रहना, **सर्वस्यापि प्रियहित वचः**- सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन बोलना और **आत्मतत्त्वे भावना**- आत्म तत्त्व की भावना रखना और जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक भव-भव में (जन्म-जन्म में) इन सब वस्तुओं की प्राप्ति होती रहे। ये सात भावनाएँ षोडस भावनाओं की साधु समाधि से लेकर आवश्यकापरिहाणि तक सात भावनाओं में यथा अवसर गर्भित हो जाती हैं और इन सात भावनाओं को भाने से मानव का व्यवहारिक जीवन समीचीन बनता है। इसी तरह **चार भावनाएँ**- तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय में कही गई हैं कि-

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु॥११॥

सत्त्व अर्थात् जीव मात्र पर मैत्री अर्थात् कल्याण की भावना रखना। गुणवानों के प्रति प्रमोद अर्थात् प्रसन्नता पूर्वक गुणग्राह्यपना होना। क्लिश्यमान अर्थात् दीन दुःखी पर करुणा व रक्षा का भाव रखना और अविनयी या विपरीत वृत्ति वाले जीवों पर माध्यस्थ या तटस्थ भाव धारण करना। इन मैत्री प्रमोद आदि भावनाओं का प्रवचनवात्सल्य भावना में समावेश हो जाता है और इन भावनाओं के भाने से अपना लोक व्यवहार मंगलमय संपन्न होता है। ऐसे ही-

- **तीन भावनाएँ** भी यहाँ कही जाने वाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय प्राप्ति की भावना या मोक्षमार्ग की प्राप्ति की भावनाएँ समझना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय का प्रथम सूत्र है कि-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः॥१॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता का नाम मोक्षमार्ग कहलाता है।

- **सम्यग्दर्शन** अर्थात् तीन मूढ़ता, षट्अनायतन, अष्टशंकादि दोष और अष्टमद ऐसे पच्चीस दोषों से रहित तथा अष्टअंगों से सहित वीतराग देव, शास्त्र और गुरु पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। इसी तरह सम्यग्दर्शन के साथ **सम्यग्ज्ञान** अर्थात् जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनतारहित अधिकता रहित, विपरीतता रहित और संदेह रहित जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को आगमज्ञ

सम्यग्ज्ञान कहते हैं। और अंत में सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के साथ

- **सम्यक्चारित्र** अर्थात् हिंसादिपंच पाप क्रिया से दूर हटकर दान, पूजा, परमेष्ठी के ध्यानादिक में प्रवृत्त होने को जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ व्रत, समिति और गुप्ति रूप सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है।

ऐसी तीन भावनाओं को षोडसकारण भावनाओं की प्रथम तीन दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता और शीलव्रतेष्वनतिचार भावनाओं में समाविष्ठ किया जाता है। इन भावनाओं का चिन्तवन करने से भव्यों को व्यवहार से निश्चय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। इसी तरह-

- **दो भावनाएँ** भी तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय में कही गयी हैं कि-

जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्॥१२॥

संवेग अर्थात् संसार परिभ्रमण से भय और वैराग्य अर्थात् विषय भोगों से विरक्ति हेतु क्रमशः जगत और काया के स्वभाव का चिन्तवन करे।

इन दो भावनाओं का समावेश अभीक्ष्ण संवेग और शक्तितस्त्याग भावना में हो जाता है। इन संवेग और वैराग्य रूप दो भावनाओं के भाने से प्रशस्त ध्यान की प्रसिद्धि होती है। और अंत में हमें आत्मध्यान रूप तप लीन करे वह है।

- **एक भावना** जो आकिञ्चन्य रूप स्वतन्त्रपने की भावना एक रूप भावना समझना चाहिए। इस भावना में पर वस्तु या संयोगात्मक पदार्थों का सम्बन्ध छूट जाता है। इस आकिञ्चन्य या स्वतन्त्रपने की भावना का समावेश षोडसकारण भावनाओं की तपभावना सम्बन्धी ध्यानरूपी तप में हो जाता है और इस एक भावना को भाकर अकिञ्चन्य रूप स्वतन्त्रता का अनुभव करता हुआ योगी सच्चे आत्मिक सुख को प्राप्त करता है।

शास्त्रों में कथित व्यापक रूप अभयदान में जैसे सभी तरह के दान (आहार, औषध, उपकरण और आवास दान) गर्भित हो जाते हैं क्योंकि चारों ही दान जीवरक्षा के निमित्त दिये जाते हैं और अभयदान का अर्थ

प्राण दान या जीव रक्षा माना गया है। इसी तरह उपकरण दान में शास्त्र, पिच्छिका, कमण्डलु इत्यादि सभी गर्भित होते हैं क्योंकि "**उपकारं करोति उपकरणं**" जो आत्मा का या धर्म का उपकार करते हैं वे सब उपकरण कहे जाते हैं उसी तरह षोडस भावनाओं के अन्तर्गत अन्य सभी भावनायें गर्भित या समाहित समझना चाहिए। इसी व्यापकत्त्व रूप अपेक्षा से अभयदान और उपकरणदान की तरह सभी भावनाओं की अपेक्षा षोडस भावनाओं की व्यापकता सिद्ध हुई। इसी कारण से ये षोडस भावनाएँ तीर्थंकर बनने में साधन हैं। अतः भव्यात्माओं को '**षोडस भावनाओं का वर्तमान परिपेक्ष में व्यवहारिक रूप**' को समझते हुये तथा अपने जीवन में इन्हें अमल में लाते हुए एवं अपने पूर्व संचित अशुभ कर्मों का क्षय करते हुए परम्परा से तीर्थंकर प्रकृति के बंध के संचय का अपूर्व लाभ प्राप्त करना चाहिए तब अपने लक्ष्य बिन्दु रूप मोक्ष सुख की प्राप्ति में ये भावनाएँ भव-नाशनी अवश्य बनेगी और मुक्तिश्री की उपलब्धि भी अचिर (अविलम्ब) अवश्य होगी। इसी भावना के साथ अनेकान्तमय जैन शासन को नमन करते हैं।

"जैनं जयतु शासनं"

अलिप्त जिनवर जग-विषयों से, नहीं राग जग-वैभव में।
अधर विराजे समवसरण में, जित-इन्द्रिय हैं जिन भव में॥
गणधर मुनिवर देवेन्द्रों से, पूजित जिनवर सुखी चरम।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम॥

-महावीर भगवान की जय-

आचार्यश्री सीमंधरसागर संस्तुति

1. कर्नाटक में बेलगाँव के, हलगे में था जन्म लिया।
साह मलप्पा पिता, मात उन-पद्मावती को धन्य किया॥
नाम 'जिनप्पा' पाकर गृह में, धार्मिक सुख में लगा सुमन।
सरल स्वभावी, समताधारी, सीमंधर आचार्य नमन॥

2. बाल ब्रह्मचारी रह करके, भव भोगों को त्याग दिया।
कार्तिक शुक्ला दोज सोम दिन, इस जग से मुख मोढ़ लिया॥
सन् उन्निस सौ त्रेपन में ही, देवरसिंगी किया गमन।
वीरसागराचार्य शरण पा, ब्रह्मचर्य में किया रमण॥
(सरलस्वभावी.......)

3. इन्हीं गुरु से क्षुल्लक पद धर, ऐलक पद भी तब पाया।
शांति, वीर की परम्परा के, सुपार्श्वसूरि को जब पाया॥
नगर जालना ऐलक पद ले, कुंथलगिरि जा किया नमन।
सुपार्श्व सूरि से सन् अंठावन, मुनि पद पर था किया गमन॥
(सरलस्वभावी.......)

4. चारितचक्री परम्परा में, सीमंधर विख्यात हुए।
सीमंधरसागर की छबिलख, अनेक भव्य भी साथ हुए॥
पावन प्रवचन, आचारों का, पालन इन्द्रिय किया दमन।
सुबाहुसागर, सु-सिद्धसागर, आदि संघ से सजे श्रमण॥
(सरलस्वभावी.......)

5. उन्निस सौ चौहत्तर सन् में, फाल्गुन शुक्ला एकम को।
विहार देश के त्रिलोकपुर में, पाया गुरु पद उत्तम को॥
चउविध संघ समक्ष आपको, महाचार्य पद मिला श्रमण।
शुभ मुहूर्त में जयकारों से, सबने गुरु को किया नमन॥
(सरलस्वभावी.......)

6. कई प्रान्तों में विहार करके, प्रकाश धर्म का फैलाया।
तीर्थक्षेत्र भी सर्व देखकर, जिन महिमा को दर्शाया॥
शिखर सम्मेद व ऊर्जयन्त के, किये अनेक हि शुभ दर्शन।
बहुत व्रतों व उपवासों से, किये आपने कर्मक्षपण॥
(सरलस्वभावी.......)

7. दीक्षा देकर शिष्य गणों का, अनुग्रह तुमने बहुत किया।
सुमति सु-सागर, नेमीसागर, दे दीक्षा हि साथ लिया॥
मल्लि सु-सागर, सिद्ध सु-सागर, इनको मुनिपद दिया परम।
सुशीलमति वा राजमति को, दिया आर्यिका नियम धरम॥
(सरलस्वभावी.......)

8. जीवन के नब्हे वर्षों में, सल्लेखन ली बारह वर्ष।
शक्कर, नमक रसों के त्यागी, निद्रा-विजयी तप में हर्ष॥
ऐसे सीमंधराचार्य को, पद प्रदान का आया मन।
विद्यासागर सूरि शिष्य वे,- आर्जवसागर भाये श्रमण॥
(सरलस्वभावी.......)

9. माघ शुक्ल षष्ठी के शुभ दिन, दो हजार पन्द्रह सन् में।
मध्य देश इंदौर नगर के, निकटोद्यान सु-परिसर में॥
चिर दीक्षित आर्जवसागर को, सूरि पद कीना अर्पण।
जयकारें भक्तों की गूंजी, कहते तव जीवन दर्पण॥
(सरलस्वभावी.......)

10. मुनिवर संघ व श्रावक जन को, सेवा भाग्य मिला सबको।
नवाचार्य आर्जवसागर ने, मार्गदर्श दीना जन को॥
फाल्गुन कृष्णा तृतिया को शुभ, दो हजार पंद्रह था सन्।
उपवासों सह सल्लेखन हुई, सीमंधर गये स्वर्गश्रमण॥
(सरलस्वभावी.......)

11. स्वर्गलोक से विदेह में जा, तीर्थंकर का दर्शन हो।
हम सबका भी नमन जहाँ पर,- पहुँचे, यह भव सुमरण हो॥
जयवन्तो जय, जयवन्तो जय, सर्व भक्त हैं करें नमन।
आर्जवमय इस मोक्षमार्ग से, जग प्रकाश मय होय चमन॥
(सरलस्वभावी.......)

-प्रस्तुति-आचार्य आर्जवसागर संघ

(समय-आ.सीमंधरसागर जी के प्रथम समाधि दिवस पर ता.25-2-2016 को बड़नगर (म.प्र.) के बड़े मंदिर (तेरापंथी) में आ. आर्जवसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में प्रस्तुति का सुअवसर)